॥ ओ३म् ॥

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

अन्तः साधना

लेखक :

स्व० महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज
(२२-११-६४ से २-७-६५ तक)

प्रकाशक :

श्रीमती राज बुद्धिराजा
जी २३३, प्रीत विहार, दिल्ली-११००९२

द्वितीय संस्करण
११००

मूल्य : ६-००

ग्रेजुएट प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक।

॥ ओ३म् ॥

-११-६४ मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी सं० २०२१ वि.

ओ३म्—सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वी नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

प्रभुआश्रित :—जिस तरह शारीरिक रोग होते हैं और उनको निदान डाक्टर, वैद्य हकीम अपने अपनें ढंग से करते हैं और हिकमत विद्या को जानने वाले शरीर में प्रमुख उत्तम अंग—दिल, दिमाग, जिगर, मेदा, इन चार को मानते हैं, इनके बिगड़ने से रोग भय होता है।

आध्यात्मिक रोग सबके लिए एक जैसे ही होते हैं। इनका इलाज निदान भिन्न-भिन्न ढंग से नहीं किया जाता। रोग सबको एक ही प्रकार का है और इलाज भी एक जैसा और परहेज भी एक जैसा हैं। कई हकीम और डाक्टर दवाई पर ही जोर देते हैं, कई वैद्य दवाई और पथ्य पर। कई हकीम प्राकृतिक वाले भोजन पर जोर देते हैं, दवाई की जरूरत नहीं बतलाते।

आध्यात्मिक मार्ग में भी प्राकृतिक की न्याई सहज नुशखा है, जो औषधि का भी काम दे, परहेज का और

भोजन का भी काम दे। वह है सगुण उपासना, जिसका वर्णन पिछली डायरी में और पुस्तक आकार में भी आ चुका है।(देखें पुस्तक निर्गुण सगुण उपासना। सम्प

अब अध्यात्म मार्ग, मोटे रूप से समझो। बु मन, वार्ता एवं ईर्ष्या, घृणा, कटु कठोरता, असत्य त आसक्ति इनका इलाज सगुण उपासना है।

२७-११-६४ शुक्रवार (व्रत वानप्रस्थाश्रम)

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी सं० २०२१ वि०

प्रभुआश्रित !—मैं और मेरे नाम का संसार इसके समझने, सुनने, प्रयोग में गलती और उलट पु से दुःख होता है। व्यक्ति हो या परिवार हो, सम हो या जाति, देश हो या संसार—सब एक ही उलझ से दुःखी होता है। जिसने मन को बनाया अर्थात् मेरी मैं से पहले है, उसके लिए 'मैं' कुर्बान हो,'मैं' उ के लिए हो वह 'मैं' के लिए न हो, तो यह भक्ति सुख और शान्ति है और 'मेरा' जो 'मैं' ने बनाया है, जो मेरी मैं के पश्चात् बना है वह मैं पर कुर्बान हो न कि मैं मेरे पर कुर्बान हो।

उदाहरण के लिए समझो—देश पहले मैं पीछे हो अपने देश और राष्ट्र-भूमि से मैं पला पोसा, रक्षित

हुआ तो 'मैं' देश पर कुर्बान होनी चाहिये न कि देश मुझ पर कुर्बान हो। मैं देश के लिये हूँ, जाति व समाज के लिए हूं। जब मैं चाहता हूं कि मैं जिन्दा रहूं, मैं सुखी रहूँ, देश या जाति या समाज या परिवार मुझ पर कुर्बान हो जावे तो यही मेरे लिये बड़ा अच्छा अवसर होगा, बस आज का व्यक्ति यही गलती करता है वह अपने पर समाज व देश को कुर्बान करना चाहता है। मेरा मकान, दुकान, धन, सम्पत्ति, मान सब बाद बना। वह मेरा है, उसके लिये 'मैं' कुर्बान न हूँ यह आशक्ति दुःखी करेगी। वह मेरे सुख, आराम, मान व पद के लिये कुर्बान होनी चाहिये तब सुख और शान्ति है। मैं प्रथम वर्णित के लिये भोग बनूं और अन्त में वर्णित मेरे लिये भोग है। इसलिये वेद भगवान ने मांग की कि अपना सब कुछ आयु, प्राण, चक्षु, कान, वाणी, मन, आत्मा, विचार, कर्म, ज्ञान आदि सर्वस्व यज्ञ और यज्ञ-रूप प्रभु के समर्पण करो। 'आयुर्यज्ञेन कल्पताम्' इत्यादि। आर्याभिविनय द्वितीय प्रकाश १३ अजुर्वेद १८

३०-११-६४ सोमवार मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी

प्रभु आश्रित !—व्यक्तित्व का प्रभाव मन अन्तःकरण पर बड़ा पड़ता है। राजा या राजअधिकारी

का प्रजा पर। धनाढ्य का नौकर मजदूर पर, दानी का मंगता पर, गुरू का शिष्य पर, माता पिता का नन्हें बच्चे पर। मगर ये प्रभाव स्वार्थ से है। असल प्रभाव उस व्यक्तित्व का समझना चाहिये जिसके व्यक्तित्व का लुच्चे, लफंगे, चोर, बदमाश बुरी आदत वाले पर पड़े। जिस के व्यक्तित्व की धाक का प्रभाव न हो, बल्कि उसके प्रेम का प्रभाव दोषी के अहंकार, और क्रोध को झुका देवें। राग द्वेष से रहित व्यक्तित्व सदा दूसरे के हृदय को परिवर्तित कर देता है या जिस के व्यक्तित्व का विश्वास जमावे अगर विश्वास नहीं जमा सका, तो विरोधियों के विरोध को ढीले कर देगा, संघर्ष की तीव्रता को कमजोर कर देगा। जो बनावट के जीवन से रहित होगा अपने को ऊंचा होते हुए भी सबको अपने बराबर देखता है समानता की स्थिति से मिलता जुलता है।

२-१२-६४ बुधवार मार्गशीर्ष कृष्णा चौदस सं० २०२१

प्रभुआश्रित !—मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य के लिए तीन चीजें चाहिए—अंजन, मंजन और रंजन। अंजन आंख के लिए, मंजन मुख दांत के लिए। रंजन मन कान के लिए। इसी तरह आध्यात्मिक रूप से भी

आंख की दृष्टि ज्ञान अंजन और बाणी की सत्यता कोमलता के लिए पवित्र मांजी छनी हुई वचन की और कान के लिए वेद सदुपदेश के मंजन की जरूरत है जिस मनुष्य के दृष्टि, श्रोत्र, वाणी पवित्र हैं, वही संसार में सर्वप्रिय होगा।

६-१२-६४ वीरवार मार्गशीर्ष कृ० अमावस्या सं० २०२१

प्रभुआश्रित !—जहां सचाई को न्यायालय माना जाता है, और जहां योग्यता को शक्ति माना जाता है, वहां सुख और शांति रहेगी, और जहां न्यायालय को ही सचाई माना जाता है और शक्ति को योग्यता माना जावे, वहां अन्याय रहेगा ! वहां कभी शान्ति न रहेगी और जहां हकूमत से धन एकत्रित किया जाता होगा, वहां साहूकार, धनाढ्य व्याकुल रहेंगे और जहां धन से हकूमत की जाती होगी, वहां गरीब को चैन न मिलेगा।

८-१२-६४ मंगलवार

मार्गशीर्ष शुक्ला चौथ सं० २०२१ वि०

प्रभुआश्रित !—प्रत्येक मनुष्य के लिए उपार्जन (कमाना) और दान जरूरी है। ब्रह्मचारी का उपार्जन ज्ञान विद्या है, यही इसका धन है, और गुरु सेवा उसका दान है। गृहस्थी का धन कमाना धन है और दान सब

प्रकार का देना, दान है। वानप्रस्थी का निदिध्यासन ही धन है, और इन्द्रिय दमन ही दान है। सन्यासी का विज्ञान धन है और वैराग्य दान है।

राजा वानप्रस्थ ले तो भिक्षा करके निर्वाह करे, वह राजा अपनी प्रजा का रक्षक पालक रहा है, उनका पितर है, उस भिक्षा निर्वाह से उसका अभिमान, क्रोध लोभ मोह सब समाप्त हो जावेंगे। एक धनी वानप्रस्थ ले तो कभी दूसरे की सहायता या दान स्वीकार न करें अपनी संतान से ग्रहण करे, तब उसकी उन्नति होगी। एक गरीब वानप्रस्थ ले, तो कभी दान या सहायता से निर्वाह न करे नहीं तो सब उन्नति रुक जावेगी। वहां अपनी कमाई करे निर्वाह अर्थ अर्थात् तन ही से अपना निर्वाह करे जो वह कर सकता है,तन से, वाणी से बुद्धि से। सन्यासी तो होता ही परिव्राट है सबका अतिथि है, उसका दान अभयदान है।

बानप्रस्थी अब निश्चय करले भगवान ने उसे आत्म कल्याण मार्गी बनाया है, विरक्त कर दिया है, ऐसा अभ्यास साधन करें कि पूर्व संस्कारों को कुचले भावी बनने न दें ताकि अगले जन्म में जन्म से वैराग्यवान हो,उसे गृहस्थ के जंजाल से और व्यवहार में फंसना न पड़े। यदि अब वानप्रस्थ लेकर भी तैयारी न की तो अगले जन्म में फिर गृहस्थ के जंजाल में या पाप पुण्य में ग्रस्त होकर आवागमन के चक्र में रहेगा।

११-१२-६४ शुक्रबार मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी २०२१ वि.

प्रभुआश्रित !—तीन शक्तियों या अधिकारियों से संसार का कल्याण होता है। एक शासन, दूसरा अनुशासन, तीसरा निदिध्यासन। राजा का शासन ठीक हो, तो प्रजा में अशान्ति नहीं आती, राजा भी सुखी और सावधान रहता है और प्रजा भी आज्ञा में रह सुखी रहती है। धर्म संस्थाएं अनुशासन (शिक्षा मर्यादा से) बढ़ती और फलती है। अपने नेताओं के अनुशासन में जब संस्था चलती है, तो जन हित होता है। अनुशासन के बिगड़ने से नाश होता है और व्यक्ति तब साक्षात् करता है जब निद्धियासन (आचरण)करता है।

शासन तमोगुण से चलता है, अनुशासन रजोगुण से चलता है, और निदिध्यासन सतोगुण से सफल होता है। आध्यात्मिक सामाजिक और राजनीतिक पद्धति उपर्युक्त रूप से सफल होती है।

अधिकार में शक्ति या बल प्राप्त हो जाता है यह शक्ति या अधिकार सब स्थान हकूमत में प्रयोग नहीं होनी चाहिए। यह शक्ति राज में भय: और धर्म संस्था में लज्जा और व्यक्ति में अध्यात्म में शंका का रूप धारण करे, तो सब सावधान रहकर अपनी उन्नति

कर सकते है । यदि राज की शक्ति का कोई भय नहीं रखता, तो नैतिक पतन हो जावेगा । धर्म संस्थाओं में यदि धर्म अवलम्बियों में अपने नेता संगतसे लज्जा नहीं होगी तो निर्लज्ज होकर संस्था को बदनाम करेंगे। व्यक्ति को आध्यात्मिक मार्ग, अपने मार्ग में शंका पैदा न होगी मैं ठीक कर रहा हूं या गल्त तो वह अपना सुधार न कर सकेगा, न अपने से वरिष्ठ से निर्णय करने जावेगा । धर्म संथाओं में जहां पद अधिकार की भूख होती है वहां अधिकारी सेवा के लिए पद नहीं लेता । अपनी प्रतिष्ठा और हकूमत के लिए दूसरों को अपने अधीन रखने के लिए पद प्राप्ति का जोर लगाता है, तब वह संस्था सफल नहीं बनती । सच्चा अधिकार सत्कार कराता है, तब उसे नमस्कार होती है, जहां अन्धकार मचाता है वहां तिरस्कार होता है ।

१२-१२-६४ शनि. मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी २०२१ वि.

ऋण से उऋण होना आवश्यक है ।

प्रभुआश्रित ! मनुष्य एक तो अपराध पाप करता है, सुख की लालसा में । दूसरा प्रमाद करता है, ऋण उतारने में, कोई कृपणता से कोई अज्ञान से । पाप का फल तो दुःख होता है जैसा-२ पाप होता है, बैसा-वैसा संकट, ताप संताप मिलता है । सांसारिक, मानसिक,

बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि इत्यादि मगर ऋण का न उतरना, यह जन्म मरण के चक्र में या कारावास में डालता है। तुम देखते हो, सरकार भी एक तो मारपीट अपराध में दंड देती है, वह दंड भुगतने पर अपराध संभाल हो जाता है। दूसरा कैद करती है दीवानी में। जो लोग ऋण उठाकर नहीं चुकाते, उन को वादी के अभियोग चलाने पर कुर्की और जब्बी कैद होती है। फौजदारी वाले अपराधी को तो हथकड़ियां बेड़ी डालने आदि लगते हैं मगर दीवानी वाले की कमर में रस्सा बांधकर पेश किया जाता है। कैद भुगत जाने के बाद भी ऋण समाप्त नहीं समझा जाता, ऋण तो देना ही पड़ता है। यह दीवानी कैद ऋण के न अदा करने के कारण होती है।

प्रत्येक मनुष्य माता के गर्भ में नाड़ के रस्से से बंधा तुम देखते हो। बड़े ऋण तीन हैं—ऋषि ऋण, देव ऋण, पितृ ऋण। ऋषि ऋण तो उतरेगा वाणी से और देव ऋण, पितृ ऋण उतरेगा हाथों से। यही दो मुख्य इन्द्रियां हैं, कर्म इन्द्रियों में। गरीब हो या अमीर मूर्ख हो या विद्वान, जितना ऋण उठाया है, उसे चुका कर मरेगा, तो फिर न बंधेगा। जितना कमाया है,

उसका दशांश दान नहीं किया तो फिर जन्म में आकर धन, दौलत सम्पत्ति से पूर्ण सुख न मिलेगा, पराधीन रहना पड़ेगा ।

ऋषि ऋण तीन प्रकार से उतारा जाता है— विद्या पढ़ाना, उपदेश करना, अपने आपको पढ़ाना, मनन करना और मन को सुमन बनाना । अहंकार या आत्मसमर्पण करने वाले पर कोई ऋण बाकी नहीं रहता । जब तक अहंकार अहं मम भाव है, तब तक ऋण हैं ।

१४-१२-६४ मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी विक्रमी सं० २०२१

जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ने का उपाय

प्रभुआश्रित—मनुष्य को प्रभु देव ने मननशील बनाया । भूत, भविष्यत् को वर्तमान कर्म के साथ न्याय बुद्धि से सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्ति के लिए । ब्रह्मचर्य काल में छोटे बालक को माता पिता लोरी देकर कहानियां सुना कर उसके हृदय में भावनाएं भरते हैं । जब गुरु के पास विद्या अध्ययन के लिए अर्पण करते हैं, तब गुरु उसकी रुचि मन में बढ़ाता है । धीरे धीरे बुद्धि का विकास करता है । ब्रह्मचारी अपने पूर्व संस्कारों, माता-पिता की भावनाओं और गुरु की शिक्षा द्वारा अपने विद्या ज्ञान वृद्धि की भविष्य के लिए

कई-कई स्कीमें सोचता, योजनाएं बनाता है। जब गृहस्थी बनता है तो प्राप्त विद्या ज्ञान शिक्षा द्वारा, धन सुख, मान, जन परिवार की वृद्धि के अनेक साधन; उपाय सोचता और आचरण में लाता है और जब वानप्रस्थ में प्रवेश करता है, तो मानो अपनी बुद्धिमत्ता से भरे तमासे से अपने को बाहर निकाल लेता है।

अव उसका काम होता है, पूर्व आश्रम की तरह आत्म कल्याण मार्ग के साधनों को सोचना-विचारना, मनन करना। सब गृहस्थ की जिम्मेवारियों से स्वतन्त्र होकर आया। वह कैसे मनन करे? और क्या मनन करे। अब उसके सामने समस्त विशाल सृष्टि है जो भोग और अपवर्ग के लिए जीवों को प्रभु ने बना कर सोंप दी। गृहस्थ तक भोग के प्रयोग के साधन सोचे गए। अब अपवर्गके साधनों का सृष्टि में मनन करना है। जो आत्म भोग शांति आनन्द को प्राप्त कराए। सृष्टि में जड़ और चेतन वानप्रस्थी या आत्म कल्याण मार्गी के सामने हैं। सबसे पहले यह पाठ सीखें कि मेरा मन कैसे स्थिर हो? स्थिर मन ही शुद्ध मनन कर सकता है। जड़ सृष्टि से वह प्रथम गुणज्ञान शिक्षा यह ले कि वह स्थिर रूप है।

पृथिवी तीव्रगति होती हुई भी कैसे स्वयं स्थिर और अपने समस्त उपजाऊ पदार्थों को स्थिर किए हुए है। फिर चेतन सृष्टि को देखे जो मानव की आंखों के सामने हैं। पक्षी, पशु, मनुष्य और अनेक जन्तु। पक्षी के दो पांव हैं और कान नहीं। वह परों से आकाश में ऊपर उड़ता है। पांव से नीचे पृथिवी पर चलता है, मगर बहुत कम, इसका निवास ऊपर वृक्षों पर होता है, अपना भोजन ऊपर और नीचे पृथिवी दोनों से लेता है। मनुष्य जीव को भी पक्षी कहा गया है, सुवर्ण पशु से उसको उपमां दी गई है, कारण—इसका लक्ष्य भी ऊपर-ऊपर उन्नत होते हुए देवलोक ब्रह्मलोक में पहुँचना है। इसके दो पर कर्म और उपासना हैं, वह भी दो पांव वाला है। मगर जैसे पक्षी के परों का सहारा इसके पीछे का पर है, ऐसे मनुष्य का कर्म उपासना का सहारा ज्ञान है। कर्म उपासना दोनों ज्ञान के बिना उड़ान उन्नति नहीं कर सकते। पशुओं से पह सीखे, तप, गर्मी-सदी-भूख-प्यास का सहन, दुःख-सुख का सहना।

ऐसे पशु भी दो प्रकार के हैं, एक समूह में रहने वाले दूसरे एकांत में खोहें बनाकर। परोपकारी पशु

समूह में रहने वाले और स्वतन्त्र एकांत खोहों में रहने वाले। वैसा ही मनुष्य परोपकार, सेवा के लिए संगठन समाज के नियम में रहे और भजन, ध्यान, उपासना, मनन चिंतन में एकांत गुफा में रहे।

अनेक जन्तु, जो असंख्यात दिखाई पड़ते हैं, एक चप्पा भर स्थान में कितना पुरुषार्थ करते हैं, अपना पेट भरने के लिए दिन भर लगे रहते हैं, तो बहुत नीचे से मिट्टी खोद मुख में से ऊपर लाकर ढेर बनाती रहती हैं। यदि उस समय कोई मनुष्य खांड मिश्री भी वहां बिल के ऊपर, पास रख दे तो चीटियां ऊपर दृष्टि ही नहीं करतीं। जिस पुरुषार्थ कार्य में लगी हुई हैं' गृह निर्माण में, उसे त्याग कर मिश्री खाने में नहीं लगेंगी, जब तक काम पूरा नहीं कर लेंगी। यही बात आत्म जागृति समय मनुष्य को करनी चाहिए कि जिस आत्म कल्याण, पुरुषार्थ में जीवन निर्माण में वह लगा हुआ है, जब सक वह उसे पूरा न कर ले, किसी भी प्रलोभन या भय का प्रभाव अपने ऊपर न होने दे। दूसरा मोह आसक्ति परिवार का त्याग। प्रत्येक जन्तु जब अण्डा से बच्चा पैदा कर देता है, तब बच्चा स्वतन्त्र और माता स्वतन्त्र। एक दूसरे से लगाव नहीं रखते। यह

सब गुण स्थिरता, पुरुषार्थ तप को धारण करके अपना आत्म विकास करे।

२. प्रभु आश्रित ! प्रत्येक मनुष्य का हृदय भाव कि वह सतोगुणी है, रजोगुणी है या तमोगुणी—कैसे पहचाना जाता है ? भोजन से, भोग से, भाषा से, भजन से प्रत्येक जाना जा सकता है, यह चार चिह्न भाव जानने के साधन बनते हैं। ये चिह्न मोह और अहंकार को दिखावे और वास्तविकता को प्रकट करते हैं।

१६-१२-६४ बुधवार

मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशी सं० २०२१ वि.

पाप कैसे धुले ?

प्रभु आश्रित ! प्रभु अत्यन्त आर्द्र स्वभाव है। जब तुम्हारे अन्तःकरण में आर्द्रता लाते हैं तब ही तुम्हारी प्रार्थना, स्तुति उपासना में प्रेम के अश्रुपात होने लगते हैं। यह ठण्डे आंसू पाप वासनाओं को धो डालने का काम करते हैं। जैसे मां अपने नन्हें बच्चे की आंखों की मैल पानी से धोती है, उज्ज्वल बनाती है। ज्ञानियों की मैल अन्तःकरण की ज्ञान अग्नि से दग्ध होती है। भक्तों की भक्ति प्रेम आंसू जल से धुलती है और कर्म-कांडियों का मल यज्ञ निष्काम कर्मों से कटता या मन्जता है। मल तीन प्रकार से दूर होता है। जलाने से, धो डालने

से और मांजने काटने से। भक्त के प्रेम अश्रु मोती-हीरे के स्थान पर उसकी शक्ति को अलंकृत कर देते हैं और वही अलंकृत सोमरस प्रभु के सामने वह आत्म-भाव से पान करने के लिए भेंट कर रहा होता है जैसे वेद भगवान ने कहा है—वायवा, याहि-दर्शते में सोमा अलंकृताः तेषां पाहि श्रुधीहवम्।

१—१—३—१ ऋग्वेद आर्याभिविनय मं० ७

२७-१२-६४ पौष कृष्णा दशमी सं० २०२१ वि०

स्वाहा का रहस्य

प्रभु आश्रित ! स्वाहा—सुहावना, मीठा और सत्य बोलना भी बड़ा यज्ञ है, यह दैवी यज्ञ है। अपने अन्दर भी हृदय में प्रसन्नता होनी और दूसरों के हित अर्थ सत्य आदरार्थ सुहावना मीठा बोलना, दूसरों की प्रसन्नता और उत्साह का वर्धक बन भक्ति सेवा का काम करता है। स्वाहा ही भक्ति और सेवा है।

३०-१२-६४ बुधवार पौष कृष्णा द्वादशी

सगुण उपासना का स्वरूप

आयुर्यज्ञेन कल्पताम् प्राणी यज्ञेन आर्या० वि० १३

प्रभुआश्रित ! इस मन्त्र के द्वारा तुम प्रतिदिन प्रार्थना करते हो, वह भी उपासना है। जब तुम क्रियात्मिक यज्ञ शरीर और इन्द्रियों मन से बाह्य मुख से यज्ञ करते हो तो वह क्रियात्मिक यज्ञ तुम्हारे इन्द्रियों मन

आदि को सामर्थ्यवान करता है। जब तुम उस क्रिया को प्रभु समर्पण कर देते हो तो वह क्रियात्मिक उपासना तुम्हारे अन्तः सूक्ष्म शरीर को शुद्ध तथा बलवान बना देती है और जब तुम आर्द्र हृदय से अन्तः में वाणी से प्रभुदेव की ज्ञानात्मिक उपासना करते हो या भावात्मिक उपासना करते हो, तुम्हारी आंखों से अश्रु जारी हो जाते हैं, बुद्धि आश्चर्य में आ जाती है मन भयभीत हो कर रोमांच खड़े हो जाते हैं और कान बार बार उन दृश्यों और घटनाओं को सुनने में तल्लीन हो जाते हैं और प्राण तुम्हारा स्तब्ध हो जाता है तो समझो, तुम वाणी से, आंख से, श्रोत्र से, मन से, बुद्धि से, प्राण से प्रभु उपासना कर रहे होते हो। यही सगुण उपासना का रूप वास्तविक है।

१-१-६५ पोष शुक्ला चोदस सं० २०२१ वि०

प्रभुआश्रित ! हर समय याद रखने की दो चीजें हैं इन जबरदस्त शक्तियों को कभी नहीं भूलना ! एक मौत, दूसरा परमात्मा। जो मौत का स्वागत हृदय से करता है, परमात्मा उसका स्वागत करते हैं। कविजनों ने कहा है—

गाफिल तुझे घड़ियाल देता है मुनादी, आकाश ने घड़ी उम्र की और घटा दी—

याद रखो ! जो परमात्मा की याद में स्वास लेता है उसकी आयु बढ़ती है और जो परमात्मा से बेमुख है, उसको पल-पल मौत के नजदीक ले जा रहा है ।

परमेश्वर की सृष्टि रचना अनन्त है । सब तत्व, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश भी तेरे लिये अनन्त है, मगर एक रस, निर्दोष बेलाग, हानि रहित और सब से अनन्त आकाश है । सब तत्वों में आश्चर्यजनक परि-वर्तन आ जाता है, मगर आकाश में कोई परिवर्तन तुमने नहीं देखा । यह सब में है इस आकाश की ऊपरी सत्ता को जैसे तू अपने मस्तिष्क में जमाए हुए हैं, ऐसे अपने दाएं बाएं, सामने, पीछे और नीचे भी यदि इस आकाश की सत्ता को ठीक रूप में दिमाग में जमा ले तो हृदय आकाश भी तुम्हारे सामने (यां तुम्हें) भान होने लगेगा ।

जैसे आकाश निर्मल है और प्रकाशित है इस प्रकार तुम्हारा हृदय-अकाश निर्मल और प्रकाशित दिखाई देगा अनन्त आकाश में ध्यान ऐसा जमाओ कि वह प्रभु जो उस आकाश में अन्दर बाहर ओत प्रोत है उसे भान कर सको । आकाश की सत्ता की न्याईं उस प्रभु की सत्ता निश्चय रूप से भान या प्रतीति कर सको

ऊपर आकाश को प्रभात समय की आशा में देखो और चन्द्रमा शुक्लपक्ष, चांदनी की आशा अपने दाएं बाएं और नीचे के आकाश को देखो। तभी तुम आकाश में घ्यान परिपक्व कर लेने पर उस प्रभु की वास्तविक सत्ता का भान सुगमता से कर सकोगे।

एक और तरीका भी है। अपने सामने के आकाश में एकाग्रता करने या बनाने का। आंख मूंद लो, दोनों हाथों को प्याला बनाकर चेहरे पर लगा दो तब उस पोले स्थान पर जो शक्ल शून्य आकाश की बन जायेगी उसमें एक मन हो जाओ वह पहले नीला हल्का बन जावेगा फिर एकाग्रता अधिक होने पर रंग बदलते बदलते वही आभा प्रभात की बन जावेगी जब सूर्य के प्रकाश में बैठकर यह अभ्यास करोगे।

२-१-६५ पौष अमावस्या सं० २०२१ व्रत वानप्रस्थाश्रम

प्रभुआश्रित ! तू प्रभु पर हुज्जे (भावनाएं) तो बड़ी रखकर मांग करता है और चाहिए भी यही क्योंकि तेरा तो कोई आश्रय और है ही नहीं। वही तेरा प्रभु है तो पूज्यनीय इष्टदेव स्वामी और वही याचनीय है। और तू उसका आश्रित है मगर यह भी तो अपने अन्तः में संभाल तू कितना प्रभु का नाम सुनते ही हर्षित हो जाता है, या उसके कंपा देने वाले नाम से कितना भय-

भीत हो जाता है। जैसे मनुष्य अपने प्रियतम के नाम सुनते ही गद् गद् हो जाता है और सांपके नाम से भयभीत हो जाता है ऐसे जिसने धारण किया होता है उस पर नाम सुनते ही प्रभाव पड़ जाता है और जिसने धारण नहीं किया होता किसी गुण का तो शब्द मात्र से प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रभु के सब नामों को तुरन्त धारण नहीं किया जा सकता। एक कर्मफल दाता का स्वरूप प्रतिदिन भान किया जाता है और किया जा सकता है वह है प्रभु की दया और न्याय स्वभाव गुण। यही प्रतिदिन देखने में आता है। उन दोनों स्वभावों में उसकी सर्वशक्तिमत्ता काम करती है जिसके कारण उसकी दात और दण्ड को कोई भी रोक नहीं सकता। कोई गुण कर्म या स्वभाव बिना साक्षात् किए धारण नहीं किया जा सकता। बुद्धि तो बोध कराती है, मगर जब साक्षात् हो जाता है तो आर्द्र हृदय ही धारणावती बुद्धि में धारण कराता है, तब जब ही नाम सुनता है तब ही नाम के सुनते ही वह साक्षात् किया हुआ गुण मस्तिष्क में आ जाता है और तत्काल ही हर्ष या भय हृदय में उत्पन्न हो जाता है। कर्मफल दाता का स्वरूप सदा पाप से भयभीत करता रहता है। भावात्मक उपासना जितनी परिपक्व होगी उतनी धारणावती बुद्धि सुदृढ़ होगी।

५-१-६५ मंगलवार पौष शुक्ला द्वितीया सं. २०२१ वि.

प्रभु आश्रित ! गम्भीरता, सहनशीलता दोनों हृदय के साथ सम्बन्ध रखती हैं। ये गुण मानव के लिए अति आवश्यक और उत्तम गुण हैं जिस मानव का दिमाग गम्भीर विचार वाला होगा, और मन हृदय सहनशील होगा, वह सर्वप्रिय और सदा शान्त और सुखी रहेगा। बिजनैस, व्यवहार, व्यापार करने वाला हो चाहे सामाजिक, धार्मिक काम करने वाला हो अथवा विरक्त ज्ञानी ध्यानी हो, ये दोनों गुण सबके लिए आवश्यक है। इन गुणों के बिना जीवन असफल है। व्यापारी ग्राहकों के साथ गम्भीरता से बात करे और हानि लाभ में सहनशील रहे।

अध्यापक अपने विद्यार्थियों शिष्यों को गम्भीरता पूर्वक पढ़ाए और उनके आचरण बनाते देखने सुनने में सहनशीलता से काम ले। उपदेशक विद्वान श्रोताओं के सामने गम्भीरता से सुनाए और शास्त्रों का गम्भीर विचार मनन करे। विरक्तज्ञानी, ध्यानी, सन्यासी, यति, मुनि बोलचाल में गम्भीरता से बोले और मान अपमान में सहनशील रहे। इन इनमें जो दिमाग से जल्दबाज उतावला होगा और मन से सहनशील न

होगा, उस की वाणी अपने और दूसरों के लिए दुःख-दायी बनेगी।

प्रभुआश्रित ! एकता बड़ी चीज है। व्यक्ति हो, परिवार हो, या समाज, जाति हो, या देश इनकी उन्नति का एकमात्र गुर एकता है यह एकता एक उद्देश्य एक विचार की होती है। इस एकता में सत्यता और मधुर मान्यता साधन शक्ति हैं, तब उद्देश्य सफल होता है।

यूं समझिए, जो मैं हूँ वह समाज है, जो समाज है, वह मैं हूं, मैं अपनी जाति, परिवार, देश का एक नमूना हूं। देखने वाला मुझे ही समाज देश जाति का रूप जान सके, उसका चिह्न है जहां एकता, एक रूपता विचार की होती है वहां जब कोई उसके समाज की निन्दा करता है, वह सहन नहीं कर सकता। जब उस के समाज की कोई प्रशंसा करता है तब वह उतना ही प्रसन्न होता है जितना उसकी अपनी प्रशंसा कर रहा हो। जहां तुम यह देखो कि अपने समाज या अपने पथ प्रदर्शक गुरु पैगम्बर ऋषि या धर्म ग्रन्थ की निन्दा पर तो व्यक्ति आग बगोला हो जाता है और प्रशंसा सुनने में प्रसन्न ही होता है मगर अपने अन्य व्यवहार

आचार से समाज देश जाति की निन्दा करता है वहां वह अपने मान को समाज, जाति देश गुरु धर्म ग्रन्थ की तुलना में कुर्बान नहीं कर सकेगा। यह एक कसौटी है, सत्यता और मधुर मान्यता की।

प्रभुआश्रित ! मन, शरीर, बुद्धि, आत्मा के अपने-अपने काम हैं। शरीर के काम वाले जब बुद्धि के कामों का बोझ अपने ऊपर लेने लग जाते हैं, या आत्मिक उन्नति करने वाला शारीरिक या बौद्धिक काम भी अपने ऊपर सहेड़ले तो वह अपने काम को क्षति ही करेगा, थक भी जाएगा। क्यों अपने ऊपर अधिक बोझ ले। सब कामों में अपने आप को घुसेड़ना नाम-वरी नहीं। अपना काम पूरा करो।

एक व्यक्ति आत्मिक उन्नति के साधन में लगा हुआ है, वह दूसरों के काम भी ले लेता है मैं कर दूंगा एक मजदूर जिसे शरीर से कमाये बिना पेट नहीं पलता वह लोगों के सुधार का काम भी अपने जुम्मे लगा ले तो भूखा भी मरेगा और बाल वच्चों को मोहताज करेगा।

शरीर में तो प्रभु ने सब अङ्ग रखे हैं। अपने तो सब काम आप करे। दिमागी भी, मानसिक भी,

शारीरिक भी, आत्मिक भी। वह सब अपने अपने समय के होते हैं। दूसरे काम में उसे हानि नहीं पहुंचती टट्टी, पेशाब, स्नान, दातुन आदि खाना, पीना सब शारीरिक कर्म हैं उनका समय नियत है, इसलिये दूसरे काम में उसे कोई हर्ज नहीं पहुंचता। जब टट्टी के समय दिमागी काम करने लग जाए तो शारीरिक काम में हानि होगी। बस अपने उद्देश्य की पूर्ति को मुख्य समझो।

८-१-६५ पौष शुक्ला पंचमी पौष २४ सं० २०२१ वि.

प्रभुआश्रित ! आजकल के जमाने में संतान वही माता पिता का अनुकरण करने वाली और अनुकूल हो सकती है जो माता पिता अपने ऊपर कंट्रोल रखने वाले होंगे अथवा संयम रखते हुए गर्भाधान किया होगा। नहीं तो साधारणतया संतान अनुकूल न बनेगी, और जो अनुकूल समझी या देखी जाती होगी, किसी विवशता, या लोक लज्जा या भय से होगी, या वह अनुकूल होगी जिसके पूर्व संस्कार कर्म आध्यात्मिक उन्नति के होंगे।

पत्रिका में हर मास आचार्य जी नोट दिया करेंगे कि १९३४ तक का मामला जो जीवन चरित्र का तुम्हारे पास हैं उसके बाद का प्रेमी जो जानते हो, वह पत्रिका

में छापने को लिख दिया करें जितना कोई जानता है अपना या पराया भले वह प्रेमी ग्राहक धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा हर मास देते रहें।

१०-१-६५ रविवार पौष शुक्ला सप्तमी सं. २०२१ वि.

प्रभु आश्रित ! तुम्हें देखना होगा—

जननी जने तो भक्त जन, या दाता या सूर।
नहीं तो इससे बांझ भली, काहे गंवावे नूर ॥

वेद भगवान ने भी कहा है—

ओ३म् स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्या चन्द्रमसाविव
पुनर्ददता घ्नता जानता संगमेमहि ।

उस मानव का जीवन सफल होगा, जो कल्याण मार्ग पर चलेगा, शरीर का कल्याण, समाज का कल्याण और आत्म कल्याण यह है स्वस्ति के अर्थ। कैसे चले? सूर्य चन्द्रमा की न्याईं। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए सूर्य चन्द्रमा नियम-बद्ध-प्रकृति के नियम अनुसार चलने-से खान-पान, सोने-जागने, उठने बैठने में चलेगा तो शरीर सदा सुखी और कल्याण में रहेगा। समाज के कल्याणार्थ जैसे सूर्य चन्द्रमा समस्त संसार के प्राणियों को पालनार्थ पृथिवी माता, जो सर्व प्राणियों की पालिका है उसे गर्मी वर्षा और रस देते है। समस्त-

देवताओं को संगठित करते हैं। ऐसे ही व्यक्ति समाज के साथ समाज हितके लिए संगठित रहें। आध्यात्मिक मार्ग में पहली बात यह समझें कि सूर्य पूर्व से उदय होता है और जब भी उदय होता है वह पूर्ण ही उदय होता है मगर अन्त उसका पश्चिम में अस्त ही हो जाना है। यह बात दृष्टि में रखें कि प्रकृति की कोई वस्तु चाहे जन्म से पूर्ण ऐश्वर्य में हो, उसका अन्त समाप्त होना है। दूसरा ज्ञानी मनुष्य का अन्तिम ज्ञान यही है कि वह ऊंच नीच में सूर्य की न्याईं एक रस रहे और चन्द्रमा पश्चिम से उदय होता है और धीरे धीरे उन्नति करता हुआ पूर्व में अपने स्वामी प्रकाश दाता के चरणों में जाकर पूर्ण होता है अपने बल पर नहीं और जब पूर्ण हो जाता है तो अपने स्वामी को पीठ देकर वापस विमुख होकर चल पड़ता है तो ज्यों-ज्यों पीठ देता है अपने प्रकाश व आकार रूप का ह्रास करता चला जाता है अन्त में उसका परिणाम अन्धकार में डूबना है। इसलिए वह सदा दानि ध्यानी ज्ञानियों की शरण ले। जिससे वह आत्म कल्याण मार्ग में सफल हो सके।

ज्ञानी वह है जो अपने सामने प्रभु को देखता है।

दानी वह है जो प्रभु को अपनी पीठ पीछे सदा देखता है और ध्यानी भक्त वह है जो अन्दर आत्मा में प्रभु सर्वान्तर्यामी रूप से देखता है। १) दानी का पीठ पीछे देखना क्या है? प्रभु को अपनी पीठ का सहारा समझे। २) पीठ पीछे किसी को नजर नहीं आता, मगर वह सदा परमेश्वर को नजर में रखे कि मेरी कृत को देखने वाला सदा विद्यमान है ताकि उससे पाप अन्याय न हो। ३) अपने ऐश्वर्य को उन्हें दे जिनकी खबर लेने वाला कोई नहीं ४) इस प्रकार दे जैसे पीठ पीछे की मनुष्य को खबर नहीं अर्थात् वह उनको देकर अनभिज्ञ सा रहे। यह है परमेश्वर का पीठ पीछे देखना, यह दानी है।

ज्ञानी वह है जो सब पदार्थों में, सब जीवों में परमेश्वर की सत्ता का भान करता है। ध्यानी उसे सर्वान्तिर्यामी के रूपमें अपने अन्दर आत्मा में देखता है।

१८-१-६५ रविवार पौष शुक्ला पूर्णमासी

सं० २०२१ माघ ५

प्रभुआश्रित ! कभी कभी कोई जन ऐसा प्रश्न करते हैं हमारी बुद्धि का विकास नहीं होता तो उनको तुम उत्तर देते हो गायत्री मन्त्र द्वारा आध्यात्मिक

व्यायाम या जप अभ्यास से बुद्धि विकसित होगी । फिर वे प्रश्न करते हैं कि कब तक और कितना जाप अभ्यास करें हमने तो कभी करके देखा ही नहीं । इन्हें प्रत्यक्ष स्थूल उपमा देकर समझाओ कि ज्ञान, तो अनन्त है परन्तु मनुष्य अणु और अल्पज्ञ है । इसके सब ज्ञान कर्म लौकिक पारलौकिक भी सीमित ही हो सकते हैं ।

देख लो ! उस का शरीर है । मकान तो बड़ा बनाया है । मगर विश्राम 5-6 फुट स्थान पर करता है पृथिवी विशाल है, परन्तु उसकी बैठक या चलन कितने थोड़े से पर्याप्त हो जाता है । अन्न बेशुमार, मगर यह एक पाव से रज (तृप्त) जाता है पानी सागर दरिया कूआं अथाह, परन्तु यह एक लोटे से तृप्त हो जाता है वायु असीम मगर यह थोड़े थोड़े सांस से तृप्त होता रहता है । सूर्य का प्रकाश, ताप बेअन्त मगर इसकी जरूरत थोड़े से पूरी हो जाती है ऐसे उतना जाप करे और काल तक करता रहे, आयु भर, जब तक इसे आत्म ज्ञान न हो । आत्मज्ञान ही आत्मा की भूख, प्यास की निवृत्ति और तृप्ति और शांति है । जप अभ्यास में जब तक आनन्द रस आता रहे जप करता रहे, जैसे भोजन खा लेने पर सुस्ती आ जाती है और मनुष्य विश्राम

करना मांगता है। यथोचित विश्राम कर लेने पर उसे बल शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है ऐसे आत्म भोजन (भजन) मिलने पर थोड़े विश्राम लेने पर आत्म बल पैदा हो जाता है और परमार्थ के कामों के करने में स्फूर्ति आ जाती है।

१९-१-६५ मंगलवार माघ कृष्णा द्वितीया २०२१ वि०

प्रभुआश्रित ! परमात्मा निर्माता और ज्ञातापूर्ण है निर्माण में और ज्ञान में। जिस निमित्त से निर्माण किया है उसके भूत भविष्यत वर्तमान का उसे पूरा ज्ञान है। मगर जीव मनुष्य जिस चीज वस्तु या कविता का निर्माण करता है, उसका एक ही अंश उसे ज्ञात होता है। जिस निमित्त या निर्माण के समय जो उसे भाव उपजा दूसरा मनुष्य निर्माता उस मनुष्य से अधिक ज्ञाता बन जाता है वह कई प्रकार के भाव, अर्थ उससे अधिक समझने लगता है।

२) वैराग्य जो तो विवेक द्वारा उत्पन्न होता है वह सात्विक होता है और जो दुख या चोट या क्रोध से उत्पन्न होता है, वह कारण वैराग्य तमोगुणी होता है। रुकावट आ जाने पर अन्दर अन्दर पश्चात्ताप होता है चाहे वह हठसे पूर्ण करें मगर उसका अंतः शुद्ध निर्मल

नहीं होता और जो वैराग्य किसी उपदेश या स्वाध्याय या घटना के देखने से उत्पन्न होता है वह रजोगुणी होता है अगर पहले विवेक बुद्धि अपनी नहीं है, हां पूर्व कर्मों के प्रबल संस्कार सतोगुणी, बिना विवेक बुद्धि संस्कारी का गुप्त विवेक भी सतोगुणी वैराग्य पैदा करता है।

२१-१-६५ वीरवार माघकृष्णा चतुर्थी सं. २०२१ वि०

प्रभुआश्रित ! उस व्यक्ति या जाति की समृद्धि होती है प्रत्येक खाद्य पदार्थ उसको शुद्ध और पवित्र मिलते हैं। यह प्रसन्नता इन्द्र देवता की होती है। इन्द्र यज्ञ का देवता है। जिनका यज्ञ इष्ट है उन्हीं पर इन्द्र प्रसन्न होता है, चाहे वह गरीब हो या अमीर उसे चाहे छोटा पदार्थ प्राप्त हो, या उत्तम। वह होगा जरूर शुद्ध। गाय ओर गायके शुद्ध दूध घी उसे अवश्य मिलेंगे, यह निशानी हैं। गाय गृहस्थी के घर की बरकत है।

२२-१-६५ माघ कृष्णा पंचमी शुक्रबार १० माघ

प्रभुआश्रित ! स्वार्थी मनुष्य अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए दूसरे के हक अधिकार की बिल्कुल परवाह नहीं करता, और उसे अपने धनमान का अहंकार भी हो तो वह और हानि पहुंचाने पर भी तत्पर रहता है।

२८-१-६५ वीरवार माघ कृष्णा एकादशी १६ माघ

प्रभुआश्रित ! जब तुम सम्मिलित स्वाध्याय कर रहे होते हो, या सत्संगियों से सत्संग वार्तालाप कर रहे होते हो तो तुम मानो आराम कर रहे होते हो। जब तुम भगवान की भक्ति में तन्मय हो पुकार प्रार्थना आदि कर रहे हो तो मानो तुम विश्राम कर रहे होते हो और जब तुम अपनी पुकार भजन में बेसुध हो जाते हो तो मानो तुम प्रभु की गोद में अपना विराम समझो तुम शंका मत करो कि तुम निकम्मे बेकार हो, तुम भी पुरुषार्थ कर रहे हो। तुम्हारी पुकार प्रभु के दरबार में ऐसी है जैसी अबोध बालक जो मां को सामने देखता हुआ पुकार करता है कि वह उसकी गोद से थोड़ी दूरी पर होता है। मां के गोद लेने पर उसका पुरुषार्थ जब शांत होने पर विराम फलस्वरूप होता है। लोग तुम को निकम्मा बेकार कहते हैं कहते रहने दो। जो बच्चा अभी मां बाप के आश्रित होता है वह तो यही काम पुकार का ही पुरुषार्थ रूप में करता है। तुम भी तो प्रभु आश्रित हो और क्या करो। जब पक जाओगे फिर प्रभु पिता की आज्ञा से प्रभु का काम कर सकोगे।

नन्हा बच्चा मां से मांगता है, सदा मांगता है। भूख प्यास के लिए अन्न और जल और सर्दी से बचने के लिए तन के वस्त्र, और आराम विश्रामके लिए मां की गोद नींद । तू तो अनादि काल से विभु महा प्रभु के लिए एक अणु मात्र ही तो है और तुम मांगते हो, इस अणु आत्मा के लिए अन्न, जल, पूर्ण पवित्रता, पूर्ण सत्यता, पूर्ण सहनशीलता आत्मिक भोजन, आत्मिक प्यास मिटाने के लिए और मांगते हो आत्मिक कवच् (वस्त्र) शत्रुओं से बचने के लिए (समत्रिणं दह) काम, क्रोध लोभ आदि शत्रुओंके नाश की प्रार्थना पुकार और नोंद गोद के लिए अपने हृदय में ब्रह्म राज्य की स्थापना। तुम्हारी मांग नन्हें बच्चे की न्याईं ठीक है,मांगते जाओ जो बड़े हैं, वे परोपकार करते हैं और जो नन्हें बच्चे हैं, वे मां से पुकार करते हैं, इसे सब जानते और मानते हैं ।

२९-१-६५ शुक्रवार माघ कृष्णा द्वादशी सं. २०२१ वि.

प्रभुआश्रित ! 'परमेश्वरो हि सर्वं जीवेभ्य आशीर्ददाति' । परमेश्वर ही जीवों को आशीर्वाद देता है । किस को किस रूप से देता है और कितने आशीर्वाद देता है ? उसका समझना आवश्यक है । जितनी-जितनी कोई ग्रहण कर सकता है, योग्यता, अधिकार के अनुसार

जितनी जिसकी सामर्थ्य होती है उसका ग्रहण करता है पूर्व कर्मानुसार ही और अबके पुरुषार्थ पर भी। जिनका दोनों का मेल होता है, वह अधिक ग्रहण कर सकता है ब्रह्मचारी को विद्या प्राप्ति की जाग, गृहस्थी को ऐश्वर्य बुद्धि का सौभाग्य, वानप्रस्थी को मोह ममता (पापों) का त्याग, संन्यासी को असार संसार वैराग्य, प्रभु में अनुराग। यह है आशीर्वाद और चौबीस घन्टे उसे आशीर्वाद प्राप्त रहती है, जिसमें मोह शोक नहीं समस्त हाल काल में सम रहता है, यह ब्रह्मज्ञानी होता है।

३०-१-६५ शनिवार मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशी सं. २०२१

प्रभुआश्रित ! शास्त्रकार कहते हैं 'श्रेयासि बहु विघ्नानि'। भले कामों में बहुत विघ्न रुकावटें आती हैं वे भले काम श्रेष्ठ काम दो प्रकार के होते हैं। एक आध्यात्मिक दूसरे सामाजिक व्यवहारिक उन्नति के जो मनुष्य अपनी आत्मउन्नति के लिए तप, जप, ध्यान अभ्यास मौनमें अपना जीवन लगाता है, उसे लोग ताना लगाते हैं उसका उत्साह भंग करते हैं घटाते हैं, उसे प्रलो-भन या भय दिखाकर तप भंग कराने पर लगे रहते हैं। कभी कोई ढोंगी कहता है। कभी कोई आलसी,निकम्मा कामचोर बतलाता है। कभी कोई उसे शास्त्र विरोध

दर्शाता है कि जीवन बेकार खो रहा है। इस नर तनसे कोई सेवा उपकार समाज जाति या देशका नहीं करता। कर्मयोग का उपदेश करते हैं महा पुरुषों के उदाहरण दे देकर। कभी साहस गिराने के लिए यूं कहते हैं, ऐसे जप तप से क्या बनेगा। भगवत् प्राप्ति कोई खाला जी का घर नहीं। शरीर को कष्ट देते रहना तो तामसिक तप है। शरीर ब्रह्म मन्दिर है। उसकी दृढ़ता के बिना आत्मा उन्नत नहीं हो सकती। इत्यादि इत्यादि।

और जो दूसरा जो सामाजिक क्षेत्र में पड़ कर जन-हित के कार्य में जीवन लगाता है, अपना सर्वस्व इसके अर्पण करता है उस पर ईर्ष्यालु लोग लांछन लगा कर उसे जनता में बदनाम करते हैं। उसे तो कुछ नहीं कहते लोगों में उस पर लांछन लगा उसे विश्वास श्रद्धा रहित करते हैं यह कह कर यह अपना नाम बढ़ाने के लिए, अगवा बनने के लिए सदस्य या राजाधिकारी अथवा लोक में पद पाने के लिए ऐसी सेवा कार्य करता है। कभी उस पर जनता से मिले धन गबन का लांछन लगाते हैं, कभी उसके अनुचित प्रयोग का दोष लगाते हैं, कभी उसके आचार पर आक्रमण करते हैं, कभी उसपर डिक्टेटरशिप, अपनी मन-मानी मन-

वाने की शिकायत करते हैं। ऐसे नाना प्रकार के दोष लगा कर जन-हितों को हानि पहुँचाते हैं। यह वह व्यक्ति होते हैं, जो न तो इस कार्य सेवा को स्वयं कर सकते हैं, न औरों को करने देते हैं।

कई ऐसे भी होते हैं, जो चाहते हैं, काम तो दूसरा करे, मगर नाम हमारा चले। हमारे आधीन हो कर काम करने वाला काम करे। जैसे कहावत प्रसिद्ध है, 'नाम मेरा, जोर तेरा' दोनों दशाओं में व्यक्ति अन्त में सफल हो सकता है, जो अपने संकल्प व्रत को सत्य और दृढ़ संकल्प, दृढ़ व्रत और सत्य व्रत समझता है, और शिव संकल्प जानता है, और सहन-शीलता को किसी मूल्य पर नहीं खोता। यही उसका भारी तप है। यह दोनों व्रत और सहनशीलता प्रभु विश्वास पर पूर्ण विश्वास पर आश्रित हैं। वह इस उपकार, जन-हित कार्य को अपना नहीं समझता, प्रभु का समझता, प्रभु का यंत्र बनकर करता है, इस कार्य या व्रत का भार वाहक प्रभु को जानता है, हानि, लाभ मान-अपमान की तिल-मात्र परवाह नहीं करता। अपने चित्त को दूसरों के लांछन, धमकियों या ताने, गिले से विक्षिप्त नहीं होने देता नहीं तो अपने में चित्त द्वेष की

अग्नि जलाकर अशांत रहेगा। श्रेष्ठ काम उस श्रेष्ठ-तम प्रभु के अपने हैं। ऐसा मानो।

आध्यात्मिक क्षेत्र में व्यक्ति दृढ़ संकल्प हो और धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में संकल्प कर्ता के साथ उसके साथी भी दृढ़ संकल्प हों, या वह इतना योग्य हो, कि जो काम साथियों की सहायता से करने की उसे जरूरत है, वह अकेला सब काम कर सकता हो, तब उसे दृढ़ता से काम करने पर उसका परिणाम जनता के सामने आने पर अपने आप उसके साथ काम करनेवाले बनते जावेंगे। जितना-२ उसका काम सन्मुख आयेगा, उतनी-२ जनता में श्रद्धा विश्वास बढ़ता जायेगा। हर अवस्था में सामाजिक काम की उन्नति और स्थिति समाज साथ बनाने से होती है।

१–२–६५ अमावस, सोमवार २० माघ

प्रभु आश्रित ! आज समत्व बुद्धि का अभाव हो गया है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' तो कहां रहा, अपनी ही जाति या आश्रम वासियों में समत्व नहीं रहा। चतुर्थ आश्रमी भी अपने लिए जो चाहते, और आचरण करते हैं, वह अपने जैसे भेस वाले सन्यासी को अपने से कम समझकर उनसे हीन भाव का सलूक बर्ताव करते हैं।

उदाहरण—आप शुद्ध घी खाते हैं, दूसरे सन्यासी को डाल्डा घी देते हैं। आप ऊंचे अच्छे स्थान पर बिस्तर में रहते हैं, तो उसके लिए जैसा भी मिल गया।

सुधार का ढंग !

उपदेष्टाओं को अपने उपदेशों में किसी भी व्यक्ति गृहस्थी या अन्य आश्रमी का जनता में नाम ले कर अपमान नहीं करना चाहिए। सुधार ताड़ना से नहीं होता, अपमान करने से नहीं होता, जितना एकांत में प्रेम-पूर्वक समझाने से या उलाहना देने से होता है। यह शैली या तो उपदेशक के अभिमान को या स्वार्थ को प्रकट करेगी, उसे अपनी तुलना में दूसरे का मान-हानि करने की होती है, या अपने स्वार्थ मान सिद्धि के लिए एक दूसरे पर रोब डालने का होता है। यह उन का सत्य वक्ता कहलाने की बात गलत है, जितना दूसरे दोषी का मान सत्कार प्यार द्वारा सुधार होता है, उतना तिरस्कार फटकार से नहीं होता।

सन्यासी सदा क्षमा-शील रहे !

कोई भी बड़ा व्यक्ति या ऊंचे आश्रम वाला यदि किसी वस्तु की लालसा रखता है, या जरूरत रखता है तो वह अपने से छोटे व्यक्ति या अपने से कम

दर्जा के आश्रमी से यह आशा रखे कि मैं बड़ा हूं, वह मर्यादा के विचार से अपने आप मुझे पहुंचा दे। अपने मांगने में या जा कर लेने में हतक समझे, तो उसकी यह भूल है। बड़ा तो वह होता है जिसे कोई चाह या लालसा नहीं। जब चाह रखता है, हाजत समझता है, तो उस देने वाले से अपने को छोटा समझना चाहिए, अपनी स्थिति का अभिमान न करे। गृहस्थी अपने आप दूर तक भी अपनी वस्तु सन्यासी के पास पहुंचाता है। और श्रद्धा से प्रसन्न होकर पहुंचाता है। जहां वह सन्यासी में अपना भक्ति भाव रखता है। जहा उसका विश्वास नहीं जमा, वहां वह यह मर्यादा पालन जरूरी नहीं समझता, कि मैं गृहस्थी हूं। सन्यासी को उसके बड़े लिहाज से स्वयं पहुंचावे। सन्यासी को सदा क्षमा-शील रहना चाहिए, वह अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए गृहस्थी का गिला न करे, नहीं तो वह अपनी शिकायत करा देगा।

३-२-६५ बुधवार

माघ शुक्ला द्वितीया २२ माघ सं० २०२१ वि०

प्रभुआश्रित ! वाणी का बल कर (हाथ) है। कर्म है आचरण है। जैसे न्यायाधीश का बल पुलिस है,

राजा का बल सेना है और स्थिरता धन है। सिद्धान्त धन है। सिद्धान्त का बल आचरण है। स्थिरता संगठन है। यज्ञ की नाभि संगतिकरण है। संगति से वृद्धि होती है। विचार की संगति व्यवहार से परखी जाती है। यही अन्दर बाहर की एकता कहलाती है। वाणी के अनुकूल मन की स्थिति हो और मन के अनुकूल आचरण हो।

६-२-६५ शनिवार बसंत माघ शुक्ला पंचमी, सं० २०२१ वि० २५ माघ

प्रभु आश्रित ! आज ऐसा जमाना है, कि किसी की प्रशंसा करो, सच्चे गुणों की, तो वह बहुत प्रसन्न होता है और कहने वाले का सत्कार और प्रेम भी करता है और यदि उसके सच्चे अवगुणों का वर्णन करो तो वह बुरा भी मानता है, रुष्ट भी होता है, और मिलना भी नहीं चाहता। सच्चाई तो परमेश्वर का गुण है, अपितु यूं समझो, सत्य ही परमेश्वर है, फिर क्यों मनुष्य प्रसन्न होता है, और चिढ़ता है। परमेश्वर तो सत्यस्वरूप है, उसकी वाणी भी सत्य है अनृत नहीं, मगर वह सत्य वाणी निर्दोष निर्मल है, इस सत्य में सौन्दर्य और माधुर्य है, वह किसी एक व्यक्ति के लिए

नहीं किसी जाति या देश विशेष के लिए नहीं वह सार्वं-भौम है। मनुष्य वक्ता की वाणी निर्दोष निर्मल नहीं होती। जब वह कहता है तो मस्तिष्क में व्यक्ति विशेष के लिए कह रहा होता है। अपने स्वार्थ या प्रतिष्ठा को सामने रख कर सिद्धांत की बात नहीं कहनी चाहिए। दूसरे के सच्चे गुणों की प्रशंसा करनी हो, तो यूं कहना अधिक अच्छा लगेगा कि प्रभु देव ने एक सज्जन में ऐसे–ऐसे गुण प्रदान किए हैं और प्रभु की देन को इसी के बल से लोक उपकार कर रहा है और जब अवगुण का वर्णन करना हो तो अपने ऊपर संकेत करके कहना चाहिए जिससे सुधार हो सके।

उदाहरण ! मैं प्रतिदिन भजन गाता हूँ कि प्रभु हमें स्वार्थ से ऊपर करो, और प्रेम का जीवन व्यतीत हो, तो इसे सार्थक बनाने के लिए मैं अपनी सम्पत्ति या ऐश्वर्य अवसर पड़ने पर अपने हृदय को विशाल बनाऊं जरूरतमंदों की जरूरत को अपनी प्राप्त फालतु वस्तु अपने जैसे दूसरों की जरूरत को अनुभव करके पूरा करूं। यही प्रभु से प्रार्थना करूं कि भगवान मुझ से कभी प्रमाद या आलस्य न हो। यदि कभी जानबूझ

कर मुझ से प्रमाद या भूल अपराध होने लगे, तो आप ही उस समय मुझे अपनी प्रेरणाओं द्वारा अपराध से बचाओ । तुम्हारे बोलने में रसाई हो खट्टाई न हो । खट्टा इतना मात्र अच्छा लगता है, जो अमृत दूध में उसे जमा दे, जो बिलोया जा कर मक्खन उत्पन्न करे । और लस्सी फोग भी तृप्ति करने वाली बन जावे । इतना खट्टा मत लगाओ जो जाग के स्थान, इसे फटा दे, न मक्खन निकले, न लस्सी काम दे ।

जब प्रेम और एकता का उपदेश हो, तब अपने बोल की प्रेम का एकता से संगति लगा लो । केवल सच बोलना ही संगति नहीं होता है, साधक बोलने में सदा अपने ऊपर लागू करके बोले और साधु इससे भी अधिक सावधान हो कर बोले । दूसरे की शुद्धताई करते हुए उसकी मैल अपने अन्दर न जमा कर दे । अपना गंद तो लोग अपने घर से बाहर फैंकते हैं, और साधु दूसरे का गंद अगर अपने अन्दर ले भी आता है, तो उसे जला दे, या दफना दे, नहीं तो पहली दुर्गन्ध तो उसे ही आयेगी, दूसरों को तो पीछे मिलेगी ।

नोट :—३०—१—६५ का सुना हुआ उपदेश उस उपदेष्टा को याद दिलाओ और उससे कहो कि वह उन

मन्त्रों से–'यत् ब्रह्म विदो यांति' संगति लगा दें, संगति कैसे बैठती हैं ?

बानप्रस्थाश्रम की दीक्षा

(अधिक आगे २१–२–६५ पर देखो)

प्रभु आश्रित ! इस बानप्रस्थ आश्रम में रहने वाले जो सज्जन बानप्रस्थ की दीक्षा लेते हैं, बहुत से आश्रम की मर्यादा और नियम में विवश हो कर लेते हैं। दिल से वह देव कोटि में आने के लिए कल्याण मार्ग नहीं अपनाते क्योंकि आश्रम में रहते हुए इन्हें आराम भी है, और सत्संग का धर्म लाभ भी पहुंचता है, इन प्रयोजनों से वह आश्रम को छोड़ भी नहीं सकते इसलिए मर्यादा पालन करना पड़ता है। यह आश्रम स्वतंत्र होने के लिए है। पशु जो सरकश निरंकुश (बे-काबू) है, उसे मालिक अगाड़ी पिछाड़ी से बांध रखता है कि स्वतंत्र होने पर उपद्रव करेगा या करता है, मगर मनुष्य बंधा हुआ है, बाहर से विषयों से व अन्दर से वासनाओं से जकड़ा हुआ है इन दोनों से स्वतन्त्र होने के लिए वास्तव में बानप्रस्थ आश्रम की दीक्षा ली जाती है। जो इसे समझ कर रस्मों के बंधनों से ऊब कर छूटना चाहता है, वही सच्चा दीक्षित होता है, तब

वह विषयों और वासनाओं से छूटने का साधन पूछता है, और आचरण भी करता है, उसका सारा जीवन फिर व्रतमय साधना मय हो जाता है।

(२१-२-६५) प्रभु आश्रित ! गृहस्थाश्रम में मनुष्य की बुद्धि (सारथी) ने इन्द्रिय रूपी घोड़ों को मनरूपी लगाम लगा विषयों में रमन के लिए जोड़ दिया। गृहस्थी रमन कर चुका सुख भोग से। अब कल्याण शांति की इच्छा हुई तो इन्द्रिय रूपी घोड़ों को मोड़ देना चाहा, तो सादा लगाम का अब काम नहीं, मन को कांटीली लगाम बना, इन्द्रियों को मोड़ा भोग से योग की ओर। प्रत्याहारी कांटीली लगाम मन इन्द्रियों के लिए बनेगी। यह मार्ग देव मार्ग शांति का है और उससे आनन्द मार्ग के लिए सन्यास में जाना पड़ेगा। गृहस्थ सुख, बानप्रस्थ शांति, सन्यास आनन्द के लिए है।

जिह्वा और वाणी का स्वाद

प्रभु आश्रित ! जिन महानुभावों ने नमक मिर्च या मीठा इसलिए छोड़ रखा है कि उनकी जिह्वा स्वाद आसक्त न हो, या मिर्च तीक्ष्ण लगने से कष्ट होता है; मगर वाणी से दूसरों पर कटाक्ष करके निन्दा शिकायत

करके वाणी का स्वाद लेते हैं, ज्यों-२ किसी पर वाणी से प्रहार करते हैं, त्यों-त्यों प्रसन्न होते हैं। उनकी वाणी गर्जती है, इससे तो बेहतर है, कि वह जिह्वा का स्वाद नमक, मिर्च से ले लेते, परन्तु वाणी का स्वाद न लेते। वाणी गर्जनी चाहिए, अमृत वर्षा जल बरसाने के लिए। वाणी तो है ही पानी। वाणी को बाण अस्त्र न बनाया जावे अपितु 'वाङ् वै मन्त्रः'। अस्त्र के स्थान मन्त्र बनाया जावे, जिससे दूसरा घायल होने के स्थान पर (विनम्र) प्रार्थी बन जावे मन्त्र मुग्ध हो जावे।

११-२-६५ वीरवार माघ शुदी दशमी

पाप की निवृत्ति और अंतःकरण की शुद्धि

प्रभु आश्रित ! कोई भी पाप किया जावे, उसका फल अंतःकरण इन्द्रिय और शरीर पर पड़ता है। अंतःकरण अशुद्ध हो जाता है, उसका संस्कार मल रूप से घेर लेता है। शरीर इन्द्रियों के तेज को नष्ट कर देता। इससे निवृत्ति और विशुद्धि की दो ही विधियां हैं। पाप का फल भुगत ले, तो निवृति हो जावेगी। मगर शुद्धि न होवेगी। जैसे रोगी का रोग तो दवाई से दूर हो गया, मगर निरोगता और बल नहीं मिला। बल मिलेगा भोजन से। अंतःकरण के संस्कार नष्ट हो गए,

मगर शुद्धि होगी, नए पुण्य कर्म करने से, तप से, संस्कार नष्ट होने का चिन्ह है, कि वह अब आर्द्र हो गया । उसमें सत्य उपदेश, सत्यज्ञान के ठहरने पकड़ने की शक्ति आ गई । इन्द्रियों ने भी कष्ट भोग लिया । और शक्ति और शुद्धि मिलेगी संयम, पाप से परहेज करने से ।

दूसरी विधि है निवृत्ति की नए पुण्य कर्म करते रहने से । अंतःकरण में प्रगति न आएगी, जब तक वही पुण्य कर्म जप, तप, भक्ति आदि उन संस्कारों मल रूप को अंतःकरण से हटाने में लगे रहेंगे । जब वे मिट जाएंगे, तब मार्ग खुल जावेगा । जो भी पुण्य कर्म होगा, वही प्रगति सफलता देगा । इसलिए साधारणतया देखते हैं, कि बहुत पुण्य कर्म करते हुए भी प्रगति नहीं होती मार्ग आगे का नहीं मिलता । वे पाप संस्कार अंतःकरण से धुल रहे होते हैं । शरीर और इन्द्रिय के निस्तेज का अर्थ है, सहन-शक्ति का नष्ट होना ।

सावधान रहो

प्रभु आश्रित ! अब व्यर्थ वृत्तियों संस्कारों को मन में बनने न दे । अब तो मेरा काम है, सावधान रहना । तू प्रतिदिन प्रार्थना करता है; 'आयुर्यज्ञेन कल्पतांम्'

कुछ भी शेष न रखकर सब तेरे अर्पण है, 'जीव पिंड सब तेरी रास' जो भी रचना शरीर में तूने की है, तेरे अर्पण है, और पूर्ण पवित्रता, पूर्ण सत्यता, पूर्ण सहन-शीलता मांगता हैं, फिर क्यों व्यर्थ की वृत्तियां मन में उठने देता है। तू कहता है, प्रभु स्वीकार नहीं करता, यदि स्वीकार कर लेता, तो किसी वृत्ति की क्या शक्ति है, कि बिना प्रभु प्रेरणा के जागे। तू भी तो साव-धान रहे। बार-२ अपनेको निर्बल बनाता है, कि जन्म-जन्मान्तर के संस्कार बड़े प्रबल हैं, मैं इनका सामना नहीं कर सकता प्रभु इसीलिए तेरी शरण पड़ा हूं, तूही इन्हें कुचल 'समत्रिणं दह' तो स्वयं ऐसे सावधान रहो, वृत्ति आए उसकी मत सुन, निकाल दे। तेरे पास एक ही अरज है 'ओ३म् सावधान' कहकर तेजी से ओ३म् के जापमें लग जा, उठी वृत्ति की सुन ही न। ओ३म्-२ शब्द को सुनने में लग जा। उसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। आप तो कुछ करे ही नहीं और निर्बल कह कर प्रभु को गिल्ला देता रह। वह करके देख !

१२-२-६५ शक्रवार माघ बदी एकादशी

'मार्मिक उपदेश'

प्रभु आश्रित ! आज तुझे एक मार्मिक उपदेश देते हैं, सावधान हो ! मोह, मोह रहित हो, अहंकार

अहंकार रहित हो, फिर किसके लिए हो ? यह तो मंत्रीमण्डल है ! अहंकार प्रधान मन्त्री की कैबीनेट है। जैसे भौतिक संसार में सब मन्त्री राष्ट्र के लिए है। राष्ट्र क्या है ? सुख समृद्धि शांति का पुंज है। यदि प्रधान मन्त्री या कोई और मन्त्री राष्ट्र पूंजी राष्ट्र के लिए अपने आप अपने मान को नहीं समझता और राष्ट्र की पूंजी को अपने लिए अपने मन्त्री मण्डल को स्थिर रखने के लिए समझता है, तो वह राष्ट्र का शत्रु है, गद्दार है। यदि वह अपना सर्वस्व राष्ट्र के लिए समझता है, तो वह वफादार मित्र सेवक है।

ऐसे ही काम क्रोध आदि अपने को आत्म राज्य के लिए समझना। आत्मा राष्ट्रपति है, राष्ट्रपति एक स्वरूप हो। इस आत्मा का राष्ट्र क्या है ? आत्मा का आत्मीय, आत्मा का ज्ञानी, आत्मा की सम्पत्ति अर्थात् आत्मा का आत्मीय परमात्मा है,आत्मा के ज्ञानी, ज्ञानी विद्वान् हैं, आत्मा की सम्पत्ति ज्ञान है।

बस समझ ले ! जो वृत्ति काम, लोभ अथवा क्रोध आदि की तुम्हारे अन्दर उठती है यदि वह आत्म राज्य को हानि पहुंचाती है, परमेश्वर से दूर ले जातीहै,

परमेश्वर से बेमुख करती है, ज्ञानियों, विद्वानों से लज्जित करती है, उनकी दृष्टि में हानिकारक है, उनका तिरस्कार करतो है, जो विद्या, ज्ञान सम्पत्ति का नाश करती है, उसपर पर्दा डालती है, अविद्या, अज्ञान का आश्रय लेतो है, वह सब आत्मा के गद्दार हैं। छुपे हुए गद्दार तो छुपकर आक्रमण करते हैं, मगर ये गद्दार वृत्तियां तो तुम्हारे सामने प्रकट होकर तुम्हारे मन्त्रियों रक्षकों को अपनी ओर फंसाती है, तब सामने आई को भी जो न कुचले, न पकड़े, उसकी खैर कहां ? हां जब मन्त्री जोर पकड़ जावें तो राष्ट्रपति को पदच्युत कर देते हैं, इसलिए तुम स्वयं सावधान रहो, तुम अपने आत्मीय परमात्मा के कंधे पर चढ़ ज्ञानियों की सलाह से उनके सत्संग से अपनी सम्पति ज्ञान को स्थिर रखो कभी ऐसे मंत्रियों को अपना शुभचिन्तक न समझो, जो वृत्तियों, गद्दारों के साथ मिलकर चश्मपोशी (उपेक्षा वृति) करते हैं।

सदा सावधान रहो, सावधान रहो, सदा सावधान रहो ! जो वृत्ति तेरी वाणी को झूठा बनाती है, जो वृत्ति तेरी बुद्धि के विचारों को अपवित्र करती है, जो वृत्ति तेरे मन की सहनशीलभा का ह्रास करती है,

और जो वृत्ति तेरे आत्म राज्य के झंडे को गिराती है, उन वृत्तियों और उनके मन्त्रियों को अपना गद्दार समझ।

नोट :—आज के उपदेश को प्रतिदिन पाठ रूप से पढ़ा करोगे, तो हर समय वृत्तियों के उठते ही स्मृति बनी रहेगी।

२) प्रभु आश्रित, बाणी जो सत्य बोलती है, उसमें बड़ा बल है यदि वह तपोमय है। वैखरी बाणी जो व्यवहार में बोलती है, यदि वह सत्यव्रत है, तो उस पर विश्वास करेंगे, यदि तप से तीक्ष्ण की गई है, तो वह व्यवहार में अमोघ अस्त्र है; व्यवहार की वृद्धि और विश्वास का। व्यवहार में उसका तप क्या है ? हानि लाभ की परवाह न करना !

एक व्यक्ति व्योपार या सौदागरी दुकान आदि का काम करता है, उसकी धारणा है, सत्य ही बोलना यदि उसके सत्य बोलने से उसका काम नहीं चलता, और वह हानि लाभ की परवाह नहीं करता; किंचन मात्र भी दिल में उदास नहीं होता, तो यह उसका तप है।

दैवी बाणी से सत्य बोलता है, मध्यमा मनन की हुई लोक सुधार प्रचारार्थ बोलता है। यदि वह तप से

तीक्ष्ण की हुई हैं, तो वह दैवी अमोघ अस्त्र है। श्रोता प्रसन्नता से मानने पर विवश हो जावेगा। यह दैवी तप क्या है ? मान अपमान का सहन करना, सत्य बोलना है। लोग उसका अपमान करते हैं, तो उसके मुख पर किंचित् मात्र बल नहीं पड़ता है। बदला, द्वेष का भाव जगता ही नहीं, तो यह उसका दैवी तप है।

आध्यात्मिक आत्मवाणी हृदय मन से बोलता है, और तप युक्त है, तो दूर-२ तक उसका प्रभाव होता है। जैसे रेडियो पर बोली हुई वाणी सागर पार भी पहुंच जाती है। ऐसे जो आत्मयुक्त और उस सत्य पर प्राण भी वार देता है, तो यह तप से तीक्ष्ण की हुई वाणी है। उसका प्रभाव सर्वत्र, जहां चाहे सामने हो या ओझल हो, डाल सकता है। यह है, पूर्ण पवित्र वाणी।

१५-२-६५ सोमवार माघ पूर्णिमा सं० २०२१ वि०

अध्यात्म विकास

प्रभुआश्रित ! मनुष्य को तो प्रत्येक कार्य, घटना में चाहे वह प्रत्यक्ष में भौतिक हो या दैविक, उसे तो उसमें आध्यात्मिकता ढूंढ़नी है। अध्यात्म विकास ही के लिए तो मनुष्य का जन्म मिलता है। यदि मानव देह में आकर भी उस ढूंढ का ध्यान नहीं रखा, तो बाह्य

वृत्ति पशु की न्यांई ही रहेगा। आरम्भ से देख और सोच। माता-पिता को प्रभु देव ने संतान दी, क्यों दी? क्या केवल उसकी वंश वृद्धि या नित्य की प्रसन्नता या दिल बहलावे के लिए दी ? नहीं, वह समझे ! उस में दैवी गुण आ गया कि अब वह खूब पुरुषार्थ करेगा, आलस्य प्रमाद का त्याग हो जायेगा। अपना कमा, बना और धार कर सबका त्याग अर्पण करेगा। कितनी उसमें सहनशीलता पुत्र के लिए उत्पन्न हो जाएगी। माता पिता अपनी संतान के लिए ब्रह्मा है, उनमें ब्रह्म के गुण आ जाते हैं, मगर स्वाभाविक अब वह उन्हें साथ-२ उसी निमित्त से ध्यान में लाता रहे। संतान की उन्नति में, उसके सुधार में ही वह अपनी शोभा समझता है।

गुरु को शिष्य क्यों मिलते हैं ? केवल पढ़ाने ऋषि ऋण से उऋण होने के लिए नहीं ! गुरु का ज्ञान, विद्या विकास, आचार व्यवहार को अधिक पवित्र बनाने के लिए ! जिन बातों की शिक्षा देगा, उस शिक्षा को अपने अन्दर लाने और अपने जीवन-से प्रकट करने के लिए शिष्य के अन्धकारों को दूर करने के लिए पहले अपना अन्धकार नाश करेगा। माता-पिता मनुष्य कच्चा सांचा पैदा करते हैं। गुरु मनुष्य

घड़ता और बनाता है, पकाता है, अग्नि रूप होकर, एक रंग कर अनेक को अपना रूप देता है, और इसी गुरु पद में ही अनेक जन्मों के भूत और भविष्य के सम्बन्धों को समाप्त करता है। वह अभिमान न करे कि मैं गुरु बन गया, अनेक मनुष्य मेरे पास आए या आते हैं। उसका अपना विकास अध्यात्म तो इसी में है, कि वह अग्नि बन गया। अग्नि पवित्र है, सब की अपवित्रता को दूर कर जला देती है, कब ? जब वह अपना प्रवेश अपवित्र वस्तु में अन्दर बाहर कर देती है। धातु जैसी कठोर पदार्थों को भी पिघला देती है, नर्म कोमल कर देती है और खोट, स्थूलता को निकाल देती है। जैसे माता पिता अपना सर्वस्व संतान के लिए अर्पण करते हैं, ऐसे ही गुरु भी अपना अर्जित ज्ञान विद्या सब शिष्य के अर्पण करता है।

परमात्मा की सब से बड़ी या महान दया तो यही है कि उसने सर्व संसार रच कर सारे का सारा हम जीवों के अर्पण कर दिया। पशुता के सारे अवगुण शिष्य से बाहर निकालता है और पवित्रता के गुण भरता है, इसलिए तो शिष्य से प्रतिज्ञा करता है, स्वीकार करते हुए–'पाशे न प्रति मुन्चासि घर्षा मानुषा' यजुर्वेद अध्याय ६ मन्त्र १६।

उदारता गुण की परीक्षा माता-पिता की संतान से प्रकट होती है और पवित्रता गुण की परीक्षा गुरु की शिष्य से प्रकट होती है । माता-पिता कभी कंजूस न हों आहार से । गुरु कभी अपवित्र न हो आचार से । प्रभु मालिक को सेवक इसलिए देते हैं कि वह समझ ले, कि मैं धनी तो हूं, मगर धन छोटों के बिना बढ़ नहीं सकता । मैं अकेला अपने पदार्थों से बड़ा नहीं कहला सकता । इसलिए छोटों को छोटे कभी न समझें, अपना अंग सहायक और अपना आप उन में, और उनको अपने आप में समझें ।

धनी का मान धन से नहीं, वही छोटें मान करते है, उनका धन और मान इन्हीं छोटों के द्वारा है । इस से अहंकार नहीं रहता, यही आध्यात्मिकता है । मालिक धन से प्रकट नहीं होता, व्यवहार कारोबार से प्रकट होता है । कोई ऐसा न कहे, कि अमुक धनी का व्यवहार वैसा है, अपने कर्मचारियों से ।

भक्त उपासक भगवान की भक्ति करता है । प्रभु देव ने उसे अपनी शरण में स्वीकार किया है, और नाम स्मरण में लगाया है, तो भक्त का मन महान् दयालु परम पुनीत सर्वशक्तिमान प्रभु का मनन करे चिंतन करे और मन में अपने मालिक प्रभु की रचना

व प्रजा का अनिष्ट चिंतन न करे, यह जान कर कि यह सब मेरे प्रभु की रचना है, मेरा प्रभु इन में वास कर रहा है और मेरा सब कुछ वही जान रहा है। यही इसका आध्यात्म विचार है। इसलिए भक्त बार-बार प्रतिदिन प्रार्थना करता है—पाहिनो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्ते रराव्णः'। (आर्याभिविनय मंत्र १२ प्रथम प्रकाश)

हे प्रभु मेरे अन्दर राक्षसी हिंसाशील, दुष्ट स्वभाव और कृपण वृत्ति विचारों से रक्षा करो। अर्थात् माता-पिता के प्रति संतान में कंजूस व्यवहार की निन्दा न हो। गुरु के प्रति शिष्यों में अपवित्र आचार की निन्दा न हो। मालिक के प्रति नौकरों में दुर्व्यवहार की निंदा न हो और भक्त के प्रति प्रभु की साक्षी में विचारों की निंदा न हो, क्योंकि भक्त को लोग नाम स्मरण, चिंतन में देखते हैं, आचार-विचार पर भी कोई शक नहीं ला सकता, सबसे अच्छा व्यवहार करता है, सदाचारी भी है, मगर मन में विचार तो गुप्त ही रहते हैं, इस लिए प्रभु ही केवल साक्षी होता है तो वह किसी का अनिष्ट चिंतन न करे, अपने किसी गुप्त स्वार्थ या मान बड़ाई के लिए कि लोग उसका दरवाजा खटखटाएं, अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए उसके पास आएं।

(२) मुफ्त-खोर जागो !

प्रभु आश्रित ! गृहस्थी लोग बड़े श्रद्धालु और सेवा स्वभाव होते हैं, मर्यादा पालन का बड़ा ध्यान रखते हैं। मगर जब बच्चा धनी या मुफ्तखोर की आओभगत प्यार स्नेह से करते हैं, चाहे लोकमर्यादा से, चाहे श्रद्धा लज्जा से, भय से, तो बच्चा धनी या मुफ्त-खोर बार-बार उनके पास जाता है और सेवा पाने पर अपनी सद्बुद्धि को खो बैठता है, बुद्धि पर धीरे-२ पर्दा पड़ जाता है। फिर वह उचित अनुचित का भेद नहीं कर सकता। प्रत्येक मनुष्य को अपना सुख स्वार्थ अन्धा कर देता है, (साधक को छोड़ कर)

ऐसे स्वार्थ अन्धों के लिए सेवा करने वाले के भाव भी अन्दर से बदलते रहते हैं। इन्हीं भावों की सेवा से बुद्धि पर दुगना प्रभाव पड़ता है, अन्त में उसकी अनुभव शक्ति मारी जाती है। प्रभुआश्रित ! तो तू भी तो मुफ्तखोरों में है, पर तू साधक है, इसलिए स्वयं जागता रहे अपने मुफ्तखोर साथियों को भी जगाए रखे।

१७–२–६५ बुधवार फाल्गुन कृ० द्वितीया

जन्म दिन मनाना

प्रभु आश्रित ! लोग तो अपना जन्मदिन बड़े

उत्साह से मनाते हैं और तुझे जन्म दिन मनाना अच्छा नहीं लगता। जब से तेरे प्रेमियों को मालूम हुआ है. तुझें बधाई भी देते हैं, और प्रार्थना भी तेरी दीर्घायु की करते हैं, तब भी तू पसन्द नहीं करता, शायद यही समझता है, कि आयु का एक साल और घट गया।

तू अब तक यही कहता रहा, जन्म दिन मनाने वालों को, कि अपने आप जन्म दिन मनाने से क्या लाभ ? मानव जीवन का ऐसा विकास हो, कि मानवता के नाते मनाने वाले मनाएं। कुछ अपने लाभ के लिए, न कि खुशामद और प्रसन्न करने के लिए। मरने के बाद जिनका जन्म दिन या मरण दिन मनाया जाता है, वह तो है असली चीज, वह तो मानवता का कर्तव्य पालन करना है।

अब तू सोच ! आज यह नया दिन तेरा ७९वां वर्ष चढ़ा है, पिछले वर्ष के कल तक ७८वें वर्ष में तेरा विकास ह्रास कितना हुआ ? अर्थात् आत्मिक उन्नति में कितना विकास हुआ है, बुराइयों का कितना ह्रास हुआ ? यदि उसमें तुझे कुछ सफलता हुई है, तो तुझे खुशी के साथ प्रभु देव का कोटिशः धन्यवाद गाना चाहिए। नहीं तो पाशविक जीवन की स्थिरता या

वृद्धि से क्या खुशी, जीवन को धिक्कारना चाहिए।

चाहिए तो पिछली पड़ताल और अगला प्रोग्राम बनाना, इस वर्ष में क्या-क्या काम करने हैं। यह तो कोई बनाता नहीं। व्यवहारिक, सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में तो प्रोग्राम बनाए जाते हैं, मगर आध्यात्मिक मार्ग का कोई कैसे अपने बल से निश्चित करे? बस लगा रहे, प्रभु आधीन है। मनुष्य यह नहीं कह सकता कि मैं इस बर्ष ब्रह्म विद्या में अमुक मंजिल तक पहुंच जाऊंगा। अभ्यास और वैराग्य की सफलता और उन्नति सब प्रभु आधीन होती है।

लोग भी नये वर्ष नये संवत् की एक दूसरे को बधाई देते हैं और कार्ड शुभ भावनाएं अपनी भेजते हैं, उस में व्यवहार की वृद्धि और सफलता की भावना प्रकट करते हैं (अपने विकास ह्रास को विचारा, प्रभु को बारंबार नमस्कार की)

छः प्रकार के तेज का विचार आत्मा—देह, प्राण, इन्द्रिय, बुद्धि और मन। (१) आत्म चेतना में विकास यह पहला तेज है। (२) देह में नीरोगता, पुरुषार्थ और कान्ति का विकास वीर्य जितेन्द्रियता से दूसरा तेज है। (३) प्राणों को वश करना, प्राण बल का विकास, यह तीसरा तेज है (४) इन्द्रिय दमन, वाणी

संयम में असत्य मिथ्या, शुभ-अशुभ, सत्य-असत्य पर कितना काबू पाया, यह ओज का विकास चौथा तेज हैं। (५) बुद्धि का बुराइयों, पाप वृत्तियों के हटाने, पवित्रता के लगने में निर्णय और निश्चयात्मिक मन्यु विकास पांचवां तेज है। (६) मन का सत्य और शिव दृढ़ संकल्प और उनके विरोध में सहनशील रहना, या सहन-शक्ति का विकास छठा तेज है। इन्हीं का विकास विकास कहलाता है।

(२) यज्ञ, जप में कैसी भावना करे

प्रभु आश्रित ! साधक मनुष्य जब जब करता है, या आहुति देता है, यद्यपि उस मंत्र के अर्थ आते भी हों, याद भी हों, और हर आहुति पर या जप की अन्तिम क्रिया पर स्वाहा कहने पर उस मन्त्र का भाव या उद्देश्य तत्काल स्मृति में नहीं रहता, या हृदय में सन्मुख जैसा नहीं प्रतीत होता तो वह जप या आहुति यज्ञ अपने ऊपर प्रभाव नहीं डालता। कई मन्त्रों में ठीक स्मृति रही, कई में चूक गया, तो वह यज्ञ या जाप खंडित हो गया, उसकी शक्ति पूरी नहीं रहती। उदाहरण तुम आहुति दे रहे हो, दुर्वासनाओं को दग्ध करने के लिए और मंत्र बोलते हो—ऊर्ध्वो नः पाहि-हंसो निकेतुना विश्वंसमत्रिणं दह'। मगर जब 'समत्रिणं दह'

के साथ स्वाहा के समय 'समत्रिणं दह'=अत्रिणं संदह का भाव प्रकट रूप से हृदय मस्तिष्क में सन्मुख होना चाहिए, तो सार्थक हुआ। अगर स्वाहा कह कर आहुति भी डाल दी और भाव सामने नहीं रहा, तो खंडित हो गया।

ऐसे जाप में ओ३म् भूर्भुवः स्वः से धियोयोः नः प्रचोदयात् तक अर्थ तो तुम को आते हैं, परन्तु जप में क्या भावना रखी है ? समर्पण की; या पाप विनाशक तेज की, या प्रेरणाओं के समझने की योग्यता की या उपकार भाव की, जो भावना रख कर जप करते हों, उस चरण के कहते समय पर और फिर प्रचोदयात् पर उसी आचरण की भावना की प्रेरणा मिलने की तत्काल सामने आई, तो सार्थक हो गया। चूक हो गई, किसी मन्त्र पर तो खंडित हो गया।

१८-२-६५ फाल्गुन कृष्णा तृतीया सं० २०२१

पंक्ति छोड़ने का फल

दृश्य—प्रभु आश्रित ! तुम्हें समझाया हुआ है, कि कतार में डट कर खड़े रहो, कतार न छोड़ना, समय पर टिकट मिल जावेगी, उतावली न करो अब देख लो दृश्य—:

पंक्ति लगी हुई है, बहुत लोग आगे खड़े है, तू भी अन्त में खड़ा हो गया, तेरे खड़े होने के पश्चात् आन की आन में तेरे पीछे भी बहुत आ खड़े हुए, मानों ५० व्यक्ति तेरे आगे थे और तू ५१ पर अन्त में था। जब तू आया, उनमें १२० तेरे पीछे आ खड़े। तू कैसे खड़ा था, शरीर से, इन्द्रियों, प्राण, मन, बुद्धि, से। यह सब खिड़की की ओर झांक रहे थे। खड़ा तो शरीर था, पर इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि इसके साथ एक ध्येय आकार थे। तेरा मन कलकत्ता की सैर करने लगा। इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि सब मन के साथ कलकत्ता के दृश्यों को देख रहे हैं। सबका खिड़की की ओर लगा हुआ ध्येय हट गया, यह कतार से निकल गया। अब जब विचार टिकट का आया फिर आ खड़े हुए। अब तो मुसाफर हो गए थे २००, अब उसे २०१ संख्या पर खड़ा होना पड़ा। फिर निकल गया बम्बई में, जब वापस आया तो पंक्ति में ४०० व्यक्ति थे, अब उसे ४०१ पर खड़ा होना पड़ा। अब तू समझा तेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया था न ? तूने पूछा कि मेरे कोटि जन्म कैसे लगेंगे ? मेरे संस्कार तो प्रभु प्राप्ति के हैं, भक्ति के भी हैं। यह है कोटि जन्म लगाने का दृश्य कभी तू डट कर खड़ा रहा और देखा अब मेरी पांचवीं

संख्या है, अब शीघ्र बारी आ जायगी, तब फि
पंक्ति से निकल गया, तो फिर तुम्हें अन्त पर खड़ा
होना पड़ा ।

दूसरा दृश्य— **आवागमन का कारण**

टिकट की खिड़की अभी बन्द है । एक व्यक्ति
यात्री आया और भी यात्री हैं, मगर सब इधर-उध
बैठे हैं । खिड़की पर खड़ा हो गया, यात्रियों से कह
बाबा हमने भी टिकट लेनी है हम भी इसी लिए आ
हैं अभी तो खिड़की खुलने में एक घंटा पूरी देर है
हमारे साथ आराम से आ बैठ । उसने कहा, भाई मुझे
अवश्य इसी गाड़ी में ही जाना है, मैं तो यहां खड़
रहूँगा । यात्री कहने लगे, बड़ा मूर्ख है, क्या हमने नहीं
जाना ? कहा भाई, तुमने भी जाना होगा, मगर मैं त
पहली टिकट लूंगा, खड़ा ही रहूँगा, जब तक खिड़की
खुलती नहीं, टिकट मिलती नहीं । डट कर खड़ा हो
गया । खिड़की के ठीक पास खड़ा है, तब भी म
इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि सब उसी में लगे हुए हैं ।

एक और व्यक्ति आया, वह खड़ा हो गया
उसकी संख्या दूसरी थी, लोगों ने उसे समझाया, उस
कहा अच्छा यार! तुम तो खड़े ही हो, लो मेरे पैसे, मेरी
भी टिकट ले लेना, मैं उधर आराम घर में बैठता हूं

औरों के साथ। उसने कहा, अच्छा ! पैसे ले लिए। घंटी बजी खिड़की खुली, खड़े हुए यात्री ने दो टिकट के पैसे दिए। बाबू ने कहा, एक टिकट के पैसे दो। दूसरे के पैसे नहीं लिए, कहा, सरकारी आज्ञा है, एक को सम्मुख देखकर रुपया पैसे लिए जाते हैं, और उसी सम्मुख के टिकट पर नाम लेने वाले का लिखा जाता है, और टिकट फोटो से छाप दी जाती है। अब अपनी टिकट छपवा और लेकर निकल। वह व्यक्ति आया, 'मेरी टिकट' ? कहा, विधान नहीं, पैसे वापस ले लो। अब वह बेचारा खड़ी हुई पंक्ति को देख कर हैरान हो गया, कि मुझे तो बहुतों के पीछे खड़ा होना पड़ेगा। आज के दृश्य से अपने जन्मों से पीछे हटते हटते का हाल कारण जान लिया। तभी तो उपनिषद्कारों ने कहा, अगर इसी मानव जन्म में आत्मदर्शन मिल गए, ठीक नहीं तो "महती विना" होगी। फिर वही आवागमन का चक्कर भोगना पड़ेगा।"

नोट—यह दृश्य महापुरुषों ने कैसे तत्काल दिखलाया जब आज मेरा आसन महान् पुरुषों के तखत के बिल्कुल इतने समीप था, जितनी कि मुझे नमस्कार करने में एक-दो इन्च की दूरी थी। मैंने कहा, 'आज तो भगवन मैं महाराज के समीप हूं, अब तो कृपा

कीजिए, तो तत्काल यह दृश्य बन गया। ऐसे संस्कार या वृत्ति पैदा करता है। काश बात तो ठीक है प्रातः भजन समय तो निश्चय हो गया पर अब लिखने पर गुत्थी सुलझी नहीं।

२०-२-६५ शनिवार, फाल्गुन कृ. पंचमी सं. २०२१ वि.

गृहस्थ में अहंकार और मोह

प्रभु आश्रित! गृहस्थियों में अहंकार ही बलवान होता है, और मोह भी। किसी-२ का अहंकार घर में भी बढ़ा हुआ होता है। नौकरों-चाकरों और व्यवहार कारोबार में तो होता ही सब का है। अहंकार मनुष्य को कठोर और प्रमादी बना देता है, मगर कारोबार में जो होशियार होते हैं, वे प्रमाद नहीं करते, हां कठोर अवश्य होते हैं। जिनका घर में भी अहंकार बढ़ा हुआ होता है, वे अपनी मनवाते हैं, और सब को अपने आधीन रखते हैं, अपने पीछे चलाते हैं चाहते हैं। घर में सबका अधिकार होने से मतभेद भी बना रहता है मगर बड़े से डर के मारे कुढ़ते रहते हैं, समय आने पर उनमें मोह, उनके अहंकार पर विजय पा लेता है, और अहंकार को झुकना पड़ता है। कारण मोह की घुट्टी जन्म से है, अहंकार बड़ा होने पर अपने कमाए धन गुण, विद्या आदि बहुत पश्चात् पैदा होता है।

एक धनी मानी माता-पिता का पुत्र बहुत योग्य बन गया, और सदा पिता-पुत्र में मतभेद रहने लगा। दोनों को अति बलवान अहंकार था। एक बार पुत्र ने माता पिता दोनों का अति निरादर किया। न केवल अनुचित बोला, अपितु, कुछ हाथ से भी मारा। सरकार में अभियोग चला, एक दूसरे के जानी शत्रु बन गए। पुत्र दूर व्यापार करने चला गया। पिता-माता अति दुःख से उसका नाम भी न सुनना चाहते थे। एक समय वह लड़का प्रदेश में बीमार हो गया, तार भेजी पिता को। माता-पिता तार पढ़ कर सब रंज, अहंकार अपमान, भूल गए; फट धन गांठ बांधा और उसकी देखभाल करने के लिए चल पड़े। मोह ने अहंकार पर विजय पाई। गृहस्थियों में प्रभु देव ने मोह को क्या महिमा लगाई है।

२२-२-६५ सोमवार फाल्गुन कृ०सप्तमी सं०२०२१ वि.

वेद आज्ञा पर चलें

प्रभुआश्रित ! तुम्हारी पत्रिका यज्ञ योग ज्योति में सदा अथर्ववेद के पहले कांड के पहले सूक्त के चौथे मंत्र में भी लिखा होता है, 'सं श्रुतेन गमे महि, मा श्रुतेन विराधिषि।' हम सुने हुए वेद के उपदेश के

अनुसार आचरण करें, इसके विरुद्ध व्यवहार न करें।

बड़ा सुन्दर और उपयोगी लगता है, परन्तु सुना हुआ याद रहेगा, और स्थिर रहेगा, तभी तो आचरण में आयेगा, और विरुद्ध व्यवहार न कर सकेगा। लोगों को तो याद नहीं रहता, फिर स्थिर कैसे रहे? इनमें दो साधनों की आवश्यकता है। पहली बात तो यह है, कि पढ़ाने या सुनाने, समझाने या सिखाने में उपदेश देने का प्रकार देव मन से हो। प्रत्येक विषय हास्य विनोद और प्रियता के साथ पढ़ाया, समझाया व सिखाया जावे। रमणीय और रोचक हो। बार-बार उस लक्ष्य से सुनने और दर्शन करने की इच्छा बनी रहे। ऐसे देव मन के लिए इसी अथर्ववेद के मन्त्र २ में आया 'पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसीष्पते निरामय मय्येव तन्वं गय।' मुझ में सुना हुआ मुझ में ही हो। दूसरी बात है, सुनने, पढ़ने वाले की, कि वह संयम की डोरी से बंधा हुआ हो। मस्तिष्क और विषय इन्द्रिय (उपस्थ योनि) एक प्रकार मनुष्य जीवन का धनुष है। इन दोनों सिरों पर कठोर संयम हो अर्थात् संयत जीवन में सुना हुआ शिक्षा उपदेश कार्यान्वित होता है। संयत और अनुशासित जीवन जिसका हो (वेद व्याख्या ग्रन्थ पूज्य स्वामी विदेह के शब्दों में

२ ओ३म् की साधना

प्रभु आश्रित ! आज तेरी शंका मिट गई। जब तू ओ३म् का जप करने लगता था और इन शब्दों को पहले दोहरा कर आर्द्र हृदय हो कर प्रेम से जाप करने लग जाता था। (प्राणों से प्यारा, पुत्र के तुल्य मेरा निज का नाम ओ३म् है) यद्यपि इन्हीं ऋषि शब्दों से तेरे अन्दर आर्द्रता पैदा हो जाती थी तथापि यह शंका रहती थी कि यह सम्बन्ध ब्रह्म और ओ३म् का कैसे लिख दिया होगा। ओ३म् तो वह स्वयं है ही मगर आज वेद व्याख्या ग्रन्थ से यह स्वाध्याय से समझ आ गई, कि ओ३म् अर्थात्मक नहीं है भावात्मक है।

अ, उ और म् यह वर्णात्मक अक्षरों में और मात्राओं में हैं। तुमलोगों के जप करने के लिए न कि ध्यान करने के लिए अ और उ दोनों स्वर हैं। अ, तो आदि और अन्त है असीम है अमात्र है। इसे जितना ऊंचा लम्बा गान किए जाओ इसका अन्त नहीं होता—व्यापक है। इसलिए इसे ब्रह्म का नाम दिया गया। और 'उ' स्वर है। मगर मध्य मुख में बोला जाता है। 'उ' का अर्थ उन्नत होने वाला। उन्नत वह होता है जिसमें न्यूनता हो और जिसका आदि न्यून है वह पूर्ण नहीं होता और उन्नति भी सीमित होती है असीम नहीं होती। तो

'उ' स्वयं मात्रा रूप है, जीवात्मा के लिए आया है। 'म' अवसान है। जीव को उन्नति के लिए साधना करनी पड़ती है। जीव पुरुषार्थी, प्रयत्न या कर्मशील है। इस की साधना की प्राप्ति समाप्ति तब होती है जब यह ब्रह्म के साथ मेल कर जाता है अर्थात् उ अ की शरण चला जाता है, या उससे सन्धि कर लेता है कैसे ? अ+ उ=ओ बन गया। अ तो पहले ही सब व्यंजनों में शामिल है। उ का नाम गुप्त लुप्त कर दिया, तभी व्यंजन अक्षर अपने नाम से प्रकट हो सका। क्+अ= क बना और क कहलाया। अब उ ने किस शर्त पर सन्धि की। इसने अपने को मोड़ा बदला अ के गुण कर्म स्वभाव को धारण किया, तो उसका रूप बन गया अ+ा फिर अपनी उन्नति का निशान बनाया, उ का ऊपर से अब बन गया=ओ। म् प्रकृत के लिए था। अब जब ओ को लम्बा ऊंचा बोलने लगा, तो मुख खुल गया। अब थककर ओष्ठ बन्द करने लगे तो बिना उच्चारण किए म् निकल पड़ा, ओ३म् बन गया। बस यही अवसान है। म् प्रकृति ने भी विचार किया, अ तो पहले वे-लाग था, अब उ भी इसमें जा मिला, मैं किस काम की, तो उसने भी अ का आश्रय लेना चाहा, तो उसे भी ऊपर चढ़ा दिया। परन्तु अलग-अलग रूप बन

गया ओं। न जीव उ से सम्बन्ध । न अ ब्रह्म से सम्बन्ध अभी उसके आश्रय में रही । जब भी वेगवान मन को साधने लगते हैं, तो तब जीव जीवात्मा का रूप सीधा सिद्ध होता है। तब जीवात्मा की स्थिति ब्राह्मी स्थिति कहलाती है, इसी में स्थित होता है ।

२४-२-६५ फाल्गुन कृष्णा नवमी, बुधवार २०२६ वि०

आत्मदा बलदा

प्रभु आश्रित ! मनुष्य विषयों से सुख तो मानता है, मगर विषय भोग जो इन्द्रियों को सुख मालूम होते हैं, उनमें बल नहीं है। बल तो पदार्थों के ग्रहण करने में हैं, अगर वह पच जावें। उस बल से शरीर काम कर सकता है, मगर वास्तविक सच्चा बल तो इन्द्रियों को विषय रहित और मन को वासना रहित करने में है। यह तब हो सकता है, जब जीव-आत्मा परमात्मा अपने देव की गोद, शरण में चला जावे। जब देह में है—तब इसे गाढ़ निद्रा सुषुप्ति काल में चंद घंटे रहने से शरीर में अद्‌भुत बल हो जाता है, जो भोजन से बहुत ही बढ़ कर होता है। बलिष्ट भोजन खाया हुआ हो, और नींद न आए तो शरीर शिथिल होगा, काम करने की हिम्मत न पड़ेगी। शरीर की स्वस्थता गहरी निद्रा पर निर्भर है। बल पवित्रता में है।

दूसरा जब भक्ति समाधि में चला जावे, तब बल उत्पन्न होता है। इस समय भी विषयों वासनाओं से शान्त होता है। प्रभु गोद या शरण में होता है। इस बल से मन बुद्धि सूक्ष्म शरीर में अर्थात् मन में साहस बल, बुद्धि में ज्ञान बल, विचार बल और आत्मा में आनन्द बल बढ़ता है। इस लिए प्रभु को 'य आत्मदा बलदा' कहा है। वह यही बल है, जो तीनों शरीरों को बल देता है।

२८-२-६५ रविवार फाल्गुन द्वादशी सं० २०२१ वि०

आसन का महत्व

प्रभु आश्रित ! पृथ्वी में बहुत-बहुत दिव्य गुण हैं। यही सब प्राणियों का सहारा और जीवन है। यह सब जानते हैं यह देव यजनी कहलाती है, मगर है यह प्रकाश रहित। यह सब प्राणियों का आसन है। आसन होता है, निचले धड़ के लिए, जिस में उपकारकमय नीच अंग हैं, पशु आदि तो अपने ऊपर के धड़ को भी जो उत्तम कहलाता है, निचले के समान करके पृथ्वी पर बैठते, लेटते हैं। मगर मनुष्य एक श्रेष्ठ प्राणी है, वह चाहे गरीब भी हो, वह अपने बैठने या लेटने के लिए कोई न कोई आसन चाहे वह चटाई या टाट ही हो; बिछा ही लेता है। जितना कोई मनुष्य

अपने को ऊंचा मानता है, वह पृथ्वी के तल और अपने शरीर के मध्य में कोई न कोई चीज डाल के पृथ्वी से ऊंचा रहता है। यह एक रहस्य की बात है, जो स्वभाव से प्रभु ने बुद्धि में रखी है।

मनुष्य प्रकाश का, ज्योति का पुजारी है। देखो पृथिवी से जो उपज, भगवान ने पैदा की, वह सब अपने-२ सौन्दर्य से भरी है. वह सौन्दर्य सबको आकर्षित करता है। यह सब सौन्दर्य उस अग्नि सूर्य ज्योति का है, जिस ज्योति के दर्शन मनुष्य ही केवल कर सकता है, और करना चाहता है, क्योंकि उस ज्योति प्रकाश में ज्योति परमात्मा की अपनी है। 'सूर्यो ज्योतिर् ज्योतिः– सूर्यः स्वाहा' 'अग्निर् ज्योतिर् ज्योतिर् अग्निः स्वाहा' यह स्वाहा बलिहार होने के अर्थ में है। मनुष्य वहां बलिहार या निछावर होता है, जो उसे आकर्षित करता है। इस आकर्षण में प्रेम रस भरा होता है। मनुष्य बाहर की ज्योति तो आंखों से देखता है, मगर अन्दर का सौन्दर्य अन्दर की ज्योति ब्रह्म ज्योति अपने हृदय में देखता है।

यह मनुष्य का हृदय उसके दर्शनीय देव ब्रह्म का आसन है, अगर यह प्रकाश रहित हुआ, तो चाहे इस

में कितने ही गुण हों, यही मिट्टी के समान है, और पशुओं के बैठने, लेटने का आसन है। यदि प्रकाशमान है, तो ब्रह्म के आसन का स्थान है। उसका वास्तविक अर्थ समझो, यानी हृदय अंत:करण मानव का एक अद्भुत आसन है। यदि यह निर्मल और उदार है, तो इस छोटें-से आसन पर सारे संसार के प्राणी सारा संसार परमात्मा के साथ समा जाते हैं। यदि यह आसन मलिन और कृपण है, तो इस पर इसके अपने माता-पिता और सगे भाई बहन भी नहीं समा सकते, इस लिए अपने आसन का महत्व और महात्म्य समझो।

बहुत लोग यह कह कर भूमि पर बैठ जाते हैं, या थर्ड क्लास नाम-मात्र का आसन बिछाकर यह कह देते हैं, जी क्या करना है, बैठना ही तो है। शरीर मिट्टी का बना है, ऐसा छोटापन नम्रता दिखाते हैं। इससे इनकी आत्म जागृति नहीं प्रकट होती, भले इसे नम्रता कह देवें, समता कह देवें। हैं यह कहने की बातें। अपने आसन को जानों। जरूरत पड़ने पर तो पृथिवी आसीन होना या किसी भाव विशेष के आधीन पृथिवी का आसन होना और बात है। भावों को निर्मल उदार बनाओ।

१-३-६५ सोमवार, फाल्गुन कृ. त्रयोदशी सं. २०२१ वि.

सेवा

प्रभु आश्रित ! सेवा एक ऐसा कार्य है, चाहे वह तन से की जावे, वाणी से की जावे, बुद्धि या मन या धन सम्पत्ति से की जावे, सारांश यह है कि किसी के लिए कोई भी सेवा की जावे, उसमें प्रकट रूप में तो कष्ट लोगों को मालूम होता है, मगर उसका फल खुशी हर्ष आनन्द या सुख लाभ पहले सेवा करने वाले को ही मिलता है, दूसरे को लाभ सुख आदि पीछे मिलता है। यह एक सिद्धांत समझ लो। जिस सेवा सहायता, परोपकार भेंट से सेवा करने वाले का मन प्रसन्न रहता है, वह अवश्य दूसरे को सुख देता है।

हां जिस सेवा से अपने को भार कष्ट मालूम होता है, वहां वह सेवा दूसरे को भी लाभ सुख खुशी नहीं दे सकेगी। मां बच्चों की सेवा कर रही है, मालिश कर रही है, नहलाती है, या रोटी खिला रही है, स्तन से दूध पिला रही है, वह पहले गद्-गद् हो रही होती है। एक उपदेशक घंटा दो घंटा लगातार बोलता है, लोग कहते हैं, उसका दिमाग थक गया, उसे कष्ट हो रहा होगा, मगर नहीं वह जितना बोलता

जाता है, श्रोताओं से पहले वह प्रसन्न हो रहा होता है। जो पुत्र शिष्य अपने पिता, गुरू के शरीर चरण दबा रहा होता है, वह स्वयं गद्-गद् हो रहा होता है।

माताएं लंगर पर भोजन गर्मी में आग पर बना रही हैं। पसीना से तर हो रही हैं, मगर वे बड़ी प्रसन्न हो रही हैं। भक्त भी जितनी भक्ति तपस्या करता है, भगवान को प्रसन्न करने के लिए, वह पहले स्वयं बड़ा प्रसन्न और हर्षित आनन्दित हो रहा होता है। धन देने वाला, भेंट करने वाला, गरीब की सहायता करने वाला जब सेवा करता है, उसका हृदय हर्षित हो रहा है। दूसरे को बाद में हर्ष होगा। जैसे कोई मालिश करने वाला किसी की मालिश करना चाहे, तो पहले उसका अपना हाथ तेल से चिकना हो जाता है। माता रोटी घी से चोपड़ने लगती है. तो पहले घी उसके हाथ को चुपड़ देता है। दाता को खुशी पहले, और लेने वाले को पीछे होती है।

६—३—६५ शनिवार फाल्गुन सुदी तृतीया

आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति

प्रभु आश्रित ! आध्यात्मिक मार्ग के साधकों की प्रगति का चिह्न क्या होता है ? यह प्रगति पूछने से तो जानी जाती है, आचरण में देखने से मानी जाती है।

जो जिसके समीप नित्य निरंतर बैठता है, उसे उस से गुप्त प्रेरणाएं भी मिलती हैं, और प्रकट रूप से भी। अब जब तुम ओ३म् का जाप करते हो, या ध्यान चिंतन करते हो। गायत्री मन्त्र का जाप विचार करते हो, तो मानो तुम देव सवितः की शरण में शब्दों द्वारा समीप होते हो। वह तो गुप्त प्रेरक हैं। ज्ञान इन्द्रियों और मन बुद्धि को आत्मा से संयुक्त करने पर यह समीपता बनती है। सम्+ईप्ता = समत्व की प्राप्ति। कुछ न कुछ समानता गुण, कर्म, स्वभाव में आना ही प्रगति है। 'ओ३म्' तो अव् धातु से बना है। अव् का अर्थ है रक्षा करना और अव अवनति को भी कहते हैं तों वह ओ३म् उपास्य देव हमारी गिरावटों की रक्षा करता है, कैस करता है।

प्रभु में विशेष दयालुता है, मनुष्य जैसी नहीं। मनुष्य तो जब किसी पर दया करता है। भूखे को अन्न दे दिया, वह तृप्त हो गया, मगर कुछ घंटों के बाद उसे भूख लग गई। मानों उसे एक मास का खर्च दे दिया एक वर्ष का दे दिया, फिर भी तो वह रक्षा का मोह-ताज रहेगा। किसी ने किसी का कष्ट टाल दिया, तो आगे भी तो उसे डर रहेगा। दया तो है, मगर सीमित। मनुष्य अपनी चीज दे सकता है, पर अपना

गुण नहीं दे सकता। मगर प्रभु जब अपने भक्त की रक्षा करते हैं, तो उसकी कमजोरी, अवगुण को देखकर उसे दूर करने के लिए उपासक में योग्यता और सामर्थ्य अपनी दिव्य महान् प्रेरणा द्वारा भर देते हैं, और उपासक स्वयं एक क्षण में उस त्रुटि और अवगुण को सदा के लिए दूर भी कर देता है, और वह योग्यता और सामर्थ्य प्रभु-प्रदत्त सत्य के लिए उसकी अपनी बन जाती है।

अब प्रगति कहां-कहां मालूम होगी? जहां-जहां तुम ने देव सवितः की दिव्य ज्योति (प्रेरणा) को ध्यान से, विचार से धारण किया है। तुम्हारे मन के संकल्पों में क्या परिवर्तन हुआ, तुम्हारी बुद्धि में अब कैसे चिंतन होता है, तुम्हारा दृष्टिकोण कितना बदल गया? तुम्हारे श्रोत्र शक्ति की रूचि किधर बन गई, तुम्हारी रसना इन्द्रिय में क्या-२ परहेज संतोष हुआ, तुम्हारी वाणी में कितनी मधुरता और सत्य आया? तुम्हारे प्राणों में कितना संयम हुआ, तुम्हारे चित्त के विकारों, वासनाओं का कितना-२ नाश हुआ?

उस ज्योति प्रेरणा का उपासक में परिणाम तत्काल मालूम हो जाता है, वह है आनन्द। जब आनन्द आता है, तो उत्साह और श्रद्धा अधिक-२ प्रभु

की समीपता के लिए बढ़ती है। यह तो है प्रगति, और अगर इतने तक नहीं पहुंचे, तो गति हुई या ना ? या जैसे थे, वैसे के वैसे उतने रहे। जिस शब्द से तुम जाप, मनन, चिंतन करते हो, उस शब्द ने अभी वास्तविक अर्थ का तुम में प्रकाश डाला, और वह शब्द एक रूप कर लिया। उच्चारण करते हुए तुम्हारे अन्दर हर्ष और उत्साह बढ़ने लगा, रोमांच खड़े कर दिए, और अपनी त्रुटियां सामने खड़ी कर दीं और तुमको व्याकुलता से रुदन होने लगा, और अपने आप में लज्जा या प्रभु का भय उत्पन्न हो गया, चाहे और स्थायी परिवर्तन किसी इन्द्रिय में नहीं आया, क्षणिक या अस्थायी हुआ है, मगर मन बुद्धि में इसका प्रभाव पड़ने लग गया, और तुम्हें आशा बंध गई कि अवश्य सफलता होगी, तो यह हैं प्रगति !

७-३-६५ रविवार २४ फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी

स्मरण योग्य सूक्ष्म बातें

प्रभु आश्रित ! भक्त मार्ग तो ज्ञान की गंगा है, सच्चा तीर्थ है। जिसके परसने स्पर्श स्नान करने से मल विक्षेप, आवरण, दुःख, ताप, संताप मिट जाते हैं। कैसा ज्ञान इस रस के पान से प्राप्त होता है ? प्रथम

ज्ञान तो यह है कि कोई किसी का सेवक नौकर नहीं है, सब एक दूसरे के सहायक समझो, यहां तक कि अपने शरीर में जो इन्द्रियां आत्मा को मिली है, वह आत्मा की कर्मचारी नहीं, वह सेवक नहीं। यदि वह सेवक होतीं, तो आत्मा के आधीन उसकी आज्ञा से काम करतीं। तुम सदा प्रभु से प्रार्थना करते हो। ओ३म् अरिष्टानि में अंगानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। ये सब इन्द्रियां मुझ आत्मा की सहायक हों, अनुकूल हों। इसलिए हृष्ठ-पुष्ट हों। आत्मा इनका नियामक है, मगर यह इसकी नौकर नहीं सहायक हैं। स्त्री पति की दासी नहीं, सहायक है, पति पत्नी का नियामक है, मालिक नहीं। नौकर का सम्बन्ध मालिक से होता है, नौकर को मालिक निकाल भी सकता है, मगर सहायक के बिना तो इसका काम नहीं चल सकता। कोई दुकानदार या व्यापारी कह सकता है, कि मैं अपने नौकर को निकाल सकता हूं इसलिए अमुक मेरा नौकर है, वह भी भूल से कहता है उसको निकाल कर दूसरे को ढूंढ़ेगा इस लिए उसका भी नौकर, नौकर नहीं सहायक है।

अहंकार और अहंकार का परिवार भक्ति मार्ग में

बड़ा बाधक है। अहंकार से ही सहायक को नौकर समझता है। सहायक तो मित्र होता है, जब ऐसा ज्ञान दिमाग में बिछा दिया जावे, तो मैत्री गुण अपने आप आ जाता है। मित्र का अर्थ है, स्नेह से हित करने वाला। अहंकार और अहंकार का परिवार आसुरी बल को बढ़ाता है, मगर आत्म बल को घटाता है।

दूसरा ज्ञान मिलता है, कि तुम जो कुछ किसी को गाली बुरा दिया चाहोगे, तो तुम्हारी अपनी जिह्वा गंदी होगी, तुम दूसरे पर गंद कीचड़ फैंकना चाहते हो, तो वह कीचड़ पहले तुम्हारे हाथ को लगेगा मैला करेगा। तुम दूसरेकी बुराई प्रकट करते हो तो, तो वह बुराई अपने अंकुर तुम्हारे मन में पहले से जमी हुई है। गुण देखोगे, तो वह गुण पहले तुम्हें स्पर्श करेगा। जो दूसरे का छिद्र अन्वेषण करता है, उसकी आत्मा में छिद्र घुस जाता है, और वह छिद्र विवेक का नाश करता है। विवेकी मनुष्य अपना आत्म–छिद्र अन्वेषण करता है।

तीसरा भगवान का भक्त निर्भय निश्चित हो जाता है, शांत और सन्तुष्ट रहता है। जिस भक्त में यह ज्ञान नहीं उपजा, उसे अपने भक्त होने का अभी

विश्वास नहीं। दूसरा उसने अपने उपास्य देव भगवान की शक्तियों को या तो जाना नहीं, अगर जाना है, तो उन पर विश्वास नहीं। विश्वास की कमी से आत्मबल बढ़ता नहीं, जितना विश्वास अपने और अपने भगवान पर होगा; उतना ही आत्मबल बढ़ेगा। आत्मबल से जितने बल और हैं; सब उसके आगे हेच हैं। जब भक्त समर्पित हो गया तो वह तो भगवान की सम्पूर्ण शक्तियों और ज्ञानों के अन्दर सुरक्षित हो गया। भगवान की शक्तियां ज्ञान उस भक्त का कवच बन गया। भगवान तो भक्त वत्सल कहलाते हैं। सिद्धांत समझ लो, जो अपनी पोजीशन पर विश्वास नहीं रखता उसमें वह बल न होगा। उदाहरण ! एक साधु है। यदि उसे विश्वास है, कि मैं साधु हूँ, तो कभी उससे साधुपन प्रकट नहीं होगा। भक्त का अपने भक्त होने का और जिसका वह भक्त है, उसका पूर्ण विश्वास हो, तो वह कभी भय नहीं मानेगा। जो भक्त भगवान को अपनी तरह अपना समझेगा। वह निर्बल रहेगा और जो भक्त अपने को भगवान का और भगवान के अन्दर समझेगा, भगवान का आश्रित समझेगा, उसे आत्मबल मिलेगा, भगवान तो उसका हरदम सहायक रक्षक है। न रिष्येत् त्वावतः सखा–गरीबी भी सहायक है, अमीरी भी। गरीबी अकड़

पाप अभिमान से बचाती है, विनम्रता की सहायक है। अमीरी सहायक है, परलोक और इस लोक के यश की। दु:ख बीमारी भी सहायक है किए पाप कर्म के उतारे की, और आगे के लिए सावधान रखने की सहायक है। प्रत्येक घटना अवस्था और कार्य में प्रभु को मंगलमय होने की सत्ता काभान करने की जरूरत है। भक्त संसार में सब काम करता हुआ अपने प्रभु की स्मृति और अनुभूति और भावना को साथ रखे। (आज का उपदेश ऊंचा और सूक्ष्म ज्ञान है, सदा याद रखने के योग्य)

साधक के भेद

प्रभु आश्रित ! जो साधक प्रभु आश्रित है या जो साधक प्रभु शरणागत है, वे तो निराकार की सगुण उपासना से सुख-सन्तोष और शांति प्राप्त करते हैं और जो प्रभु अर्पित हैं, वे निर्गुण निराकार उपासक हैं। उनको आनन्द प्राप्त होता है। सगुण उपासक की आवश्यकताओं और आपत्तियों को भगवान अपने आप समाधान कर देते हैं, निवृत कर देते हैं। आवश्यकताओं की निवृत्ति से सुख सन्तोष और आपत्तियों की निवृति से शांति प्राप्त होती है। अर्पित सदा शाश्वत आनन्द

में रहता है, कि वह भगवान के आनन्द स्वरूप के दर्शन में मग्न होता है।

दाता बनो

प्रभु आश्रित ! सबसे बड़ी प्राप्ति प्रभु के गुणों में 'दाता' की है, तुम भी दाता बनो। कोई ज्ञान दाता है कोई अन्न, जल दाता है, कोई द्रव्य दान दाता है, कोई वस्त्र दाता है, कोई नाम दाता है। यदि तुम्हारे पास इनमें से किसी की सामर्थ्य योग्यता नहीं है, तब भी तुम दाता बन सकते हो। दूसरे दाता भी हाथ से दान करेंगे बुद्धि से या वाणी से दान करेंगे और महान बनेंगे। तुम भी सबका छोटे बड़े का गरीब अमीर के लिए आदर सम्मान दाता बनो। प्यार प्रेम दाता बनो, यह जानकर कि इनमें तुम्हारा उपास्य देव प्रभु विद्यमान है, और तुम्हारे पास उच्च आसन बिठाने को नहीं है, तो तुम्हारा हृदय बड़ा उत्तम आसन है। हृदय में उनको बिठाओ। अब रहा सवाल, हिंस्र प्राणियों का, इनका तुम आदर सम्मान करने से डरोगे या उपेक्षा करोगे, मगर नहीं, उनको भी हृदय से अभय दान दो।

अब विचारो ! गरीब, कंगाल, अनपढ़, असमर्थ चाहे तो दाता बन सकता है। ऐसा मनुष्य जो अलग-

थलग एकांत सम्पर्क न रखने वाला हो, तो वह भी दाता बन सकता है। अपनी इन्द्रियों को लगाम दाता। जैसे स्वयं अलग रहना चाहता है ऐसे इन्द्रियों को विषयों से अलग रखे।

९-३-६५ मंगलवार फाल्गुन षष्ठी सं० २०२१ वि०

युद्ध क्षेत्र

प्रभु आश्रित ! यह संसार तो युद्ध क्षेत्र है। जीवन यात्रा में संग्राम ही संग्राम है। चाहता सब कोई अपनी जीत है, हार कोई नहीं मानना चाहता। पहलवान तो शरीर से लड़ते हैं, दावों के जोर पर। शरीरों को खूब पालते हैं, और शास्त्रार्थी लड़ते हैं बुद्धि के जोर पर। मगर भक्त लड़ता है भगवान से जो महान् सर्वशक्तिमान है, और यह लड़ता है मन से, और इसका युद्धक्षेत्र भी मन ही रहता है। भक्त जानता है कि भगवान सर्वशक्तिमान् है, मगर लड़ता इसलिए है कि वह करुणा निधान और परम दयावान है। दो प्रकार से लड़ता है। कभी जोर-जोर से, कभी ज़ारी से। जब जोर से लड़ता है तो भक्त का रस्सा या तार का सिरा पकड़ कर वे भाव छुप जाते हैं, और तार के सिरे को कड़ाई से खींच रखते हैं। ज्यों-ज्यों भक्त तार का

खिंचाव देखता है, वह और अधिक जोर से गिल्ला ताने देता है। कठोर वचन बोलता रहता है, मगर भगवान बड़ी गम्भीरता धीरता से सुनते रहते हैं, टस से मस नहीं होते। अपने ऊपर कोई प्रभाव नहीं डालते। फिर जब भगवान देखते हैं कि यह भक्त बेचारा थक जायेगा अशांत मस्तिष्क हो जावेगा, तो तार को ढीला कर छोड़ देते हैं, तो भक्त जो अकड़ से तार खींच रहा था, अब भूमि पर बैठ जाता है, एकदम चुपचाप हो जाता है। मन की दौड़ सब समाप्त हो जाती है। जब ज़ारी से लड़ाई करता है, तो भक्त वत्सल भगवान दीन बन्धु करुणा निधान प्रभु प्रभावित होकर उसे सांत्वना देने लगते हैं।

भक्त समझता है, मेरे पास आ कर, मेरा चित्त शांत कर मेरा साहस बढ़ा रहे हैं। होते तो दोनों समीप हैं, मगर ओझल आंखों से, परन्तु ज़ारी वाला अपने भावात्मक या आत्म भावना से उसे समीप भान कर रहा होता है। इसलिए तेरे लिए तो ज़ारी की लड़ाई अच्छी है, क्योंकि तेरा कोई पुण्य नहीं, कोई दान नहीं कोई विद्या नहीं, बल नहीं, तो क्या जोर चलेगा ? सदा उस दयालु देव की दया वा रहमत का इच्छुक

रहा है, वही ठीक है।

जब और कोई तुमसे लड़ने की करे, कह दे, तेरे साथ शरीर से नहीं लड़ सकता, यह निर्बल है, जबान से लड़ाई करना मैं जानता नहीं, हां मन से लड़ाई करना चाहता है, तो तू अपनें घर में बैठकर भी मुझ से लड़ाई कर सकता है, और मनमानी जीत कर सकता है, और प्रसन्नता के गीत गा सकता है।

प्रभु आश्रित ! सब से बड़ी लड़ाई है साधक के लिए। कोई भी लड़ाई बिना हथियार, सहायकों और अनुभवी, बलशाली, दूरदर्शी सच्चे हितैषी गुप्तचरों के बिना विजय नहीं कराती। साधक का युद्ध क्षेत्र तो उसका मन ही है। साधक की लड़ाई हैं, काम, क्रोध, लोभ मोह अहंकार से जिनके आधीन अन-गिनत सेना (कु-वृतियां) हैं, और जो सच्चाई से लड़ती हैं। तुम लड़ो। अपना सारथी, सहायक पथ-प्रदर्शक एक अपनें प्रभु को ज़ारी (दुःखी पुकार के)अस्त्र से अपना बनाओ, वह तुम्हारी जारी प्रार्थना एक बार स्वीकार कर ले, तो तुम निश्चिंत हो जाओ। वह बिना हथियार अपने गुप्त कलाओं से शत्रुओं के सब दुर्ग तोड़ देगा, जिन्होंनें तुम्हे घेरा हुआ है। वेद भगवान स्वयं विश्वास दिलाता

और प्रमाण देता है, कि प्रभु जैसा कोई मित्र सखा नहीं है। 'इन्द्रस्य पुज्य सखा' वह अंतर्यामी है, गुप्तचर है, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान है, वह शत्रुओं में भी रहता हुआ शत्रुओं को दिखाई नहीं देता। और कहा है—

ओम् वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंमुदवा भरे भरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्रशत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज। आर्याभिविनय।

कौरवों पांडवों के युद्ध में भगवान कृष्ण अर्जुन का सारथी था।

१०-३-६५ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी सं० २०२१ वि०

अंगों का विकास

प्रभु आश्रित ! तुम प्रतिदिन पाठ करते हो,— तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। इसको अब तक क्या समझा ? अब समझ, मनुष्य को यह तन मिला है, मानव तन। तनु का अर्थ है, विस्तार विकाश करना। किस चीज का विस्तार करना ? यथा ब्रह्माण्डे तथापिंडे ब्रह्माण्ड में प्रभु ने तीन लोक बनाए, द्यौ, अंतरिक्ष, पृथिवी। तुम्हारे पिंड में भी तीन लोक—मस्तिष्क (द्यौ) धड़-गर्दन से नाभि तक (अंतरिक्ष) नाभि से पांव तक (पृथिवी) इन में जो अंग हैं, अन्दर और बाहिर के,

जिनसे शरीर का विकास होता है, और जिनसे आत्मा का विकास होता है। संक्षेप में यूं समझो, वेद नें यह भी कहा, अयं यज्ञो तनुः कि यह तन यज्ञ के लिए मिला है। यज्ञ नाम सेवा का है, श्रेष्ठतम कर्म का है तो जो मनुष्य अपने मस्तिष्क और उसके अंगों से श्रेष्ठतम कर्म निष्काम कर्म करेगा, उसका मस्तिष्क विकास करेगा और उसे उत्तम लोक द्यौ लोक में गति मिलेगी। जो निष्काम कर्म धड़ से करेगा, धड़के अंगों से करेगा उसके धड़ के अंग विकास करेंगे और उसकी गति अंतरिक्ष लोक में होगी। जिसका निष्काम कर्म निचले भाग से होगा, इन्द्रियां संयत होंगी, उनका विकास और पृथिवी लोक में उत्तम जन्म मिलेगा।

आत्मा का सम्बन्ध प्रकाश, ज्ञान लोक, द्यौ से है, इसलिए मस्तिष्क और मस्तिष्क के अधीन इन्द्रियों से जो ज्ञान यज्ञ ध्यान यज्ञ करेगा, या कर्म यज्ञ करेगा, उसे द्यौ लोक की प्राप्ति होगी। मस्तिष्क में सब ज्ञान इन्द्रियां हैं, मगर वाणी और प्राण यह कर्म इन्द्रियों में श्रेष्ठ हैं। वाणी से विद्या दान, ज्ञान दान प्राण से ध्यान करना, यह देव लोक के काम है, इस का विकास, विस्तार पवित्रता का आना आत्मिक विकास है।

११-३-६५ गुरुवार फाल्गुन शुक्ला अष्टमी सं. २०२१ वि.

'संघ का आदर्श'

प्रभु देव ! मेरी नित्य प्रति और हर समय एक ही मांग तेरे दरबार में रहती है, तुझे बुलाता भी हूं, मगर पुकार के रूप में, अपने दर्शन देने के लिए नहीं, केवल पुकार के रूप में, अपने दर्शन देने के लिए 'हव्यं दातये' में अपना भाव वही रखता हूँ, जिसकी पुकार करता हूं, पूर्ण पवित्रता, पूर्ण सहनशीलता, पूर्ण सत्यता वर राज्य, वर विद्या, वर नीति और समत्रिणं दह जब तक मेरी वासनाएं जल न जावें और मेरा हृदय आसन पवित्र, सत्य, सहनशील न बने, तब तक मैं आप के दर्शन का अधिकारी कैसे बन सकता हूं। गरया ज़ारी (व्याकुलता से रो-रो कर) पुकार करता हूं। अच्छा प्रभु ! भवान्नःसध माद्ये–मैं तो अपने रोते मोती की तरह बिन्दु अश्रुपात करने में प्रसन्न और आनन्द अपना मोद मान रहा हूँ। तू कोई मोद विनोद की बात चाहे न कर, मुझे तो इसी में रस सोम रस आ रहा है। यकदम अंतः आवाज सुनाई देने लगी, (महा पुरुषों की)

प्रभु आश्रित ! तुम पूर्ण पवित्रता आदि की पुकारतो रोज करते हो, परमेश्वर पूर्ण पवित्र है, वह

निराकार तुम्हारे सामने नहीं, तुम कोई आदर्श तो अपने सामने पवित्रता आदि का तो बनाओ, जिसका तुम अनुसरण कर सको। बिना आदर्श सम्मुख होने के कोई साधक साधना सार्थक नहीं कर सकता। यही भूल तो बहुत लोग करते हैं। चाहते तो हैं, कि हमारे दुर्गुण दूर हों और प्रार्थना भी रोज कर देते हैं, 'विश्वानि, दुरितानि परासुव' की। न उनके सामने कोई दुर्गुण होता है, न पुकार प्रार्थना सुनी जाती है। तुम अपना दुर्गुण अवगुण न्यूनताको बेशक सामने रख कर प्रार्थना करते हो, वह तो उसी निराकार परमात्मा ने दूर करनी है। वह सुनता है, सुन रहा है, मगर गुणों को लाने के लिए जिस गुण को तुम चाहते हो, वह किस प्रकार का हो। देखो, सुनो !

परमेश्वर ने दिव्य गुणों की सृष्टि देवताओं की बनाई। वे पवित्र हैं, वे ही पवित्र करते हैं, मगर वह करते प्राकृतिक वस्तु को हैं। तुम चेतन हो, आत्मा भी चेतन है, वह तो पवित्र है ही वह इन सब वृत्रों से घिरी हुई है, और वह जमे रहते हैं, मन बुद्धि चित्त में, तो उन देवताओं के गुण कर्म स्वभाव को लक्ष्य में रख कर तुम अपनी मन, बुद्धि के पर्दे हटवा सकते हो।

भगवन् ! इसी लिए तो मैं निर्मल अस्पर्श आकाश देवता को लक्ष्य रखता हूं। जैसा वेद ने कहा 'ओ३म् खं ब्रह्म'......। उत्तर मिला—आकाश का उदाहरण तो पूर्ण है पवित्रता में, मगर तुम तो संसार के संसर्ग में हो। तुम तो ऐसा उदाहरण लक्ष्य देवता को सन्मुख रखो, जो सबके संसर्ग में खान-पान रहन सहन आदि में प्रति दिन प्रयोग होता है। जैसे तुम संसर्ग में हो, वह तुम्हारा देवता, पवित्र भी हो और जिन दोषों से मनुष्य अपवित्र होता है, उसके देखने और आचरण से तुम्हें ठीक प्रतीत हो। उन्हीं का तुम अनुकरण करोगे, तो तुम्हारी मांग पूरी हो जावेगी। देवता पांच हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी। अब तुम जांचो, पवित्रता तो सब में है, और सहनशीलता आकाश, पृथिवी, जल में है। सत्यता तो इन में बसने वाली विश्व मानस चेतना है, वह भी तुमने इन से लेनी। अब इन तीन की तुलना करो। पृथिवी में अत्यंत सहनशीलता है। तुम्हें ऐसी ही सहनशीलता चाहिए। जिसमें प्रकाश हो, न तुम्हें भान हो, और कोरा मिट्टी का माधो न बनो, वह है जल। जल के गुण कर्म स्वभाव को जीव आत्मा धारण करे। प्रभु अग्नि को तो तुम बुलाते हो, अग्न आयाहि। क्या करें !

प्रकाश के लिए वीतये।

अब देख लो, प्रकाश धारण करने की शक्ति न तो पृथिवी में है, न वायु आकाश में। पृथिवी ताप तो धारण कर सकती है, जो गरम हो जाती है, तुम्हें गरम नहीं होना। आकाश प्रकाश का सहारा है, धारण नहीं करता, मगर तुम ने धारण करना है। एक जल ही है, जो शांत भी, शीतल और प्रकाश को धारण भी करता है, तुम केवल अपना मुख जल में देख सकते हो, अन्य देवताओं में नहीं। अपना स्वरूप देखना भी चाहिए, शान्त, शीतल रहना भी चाहिए, कोई छेड़े तो तुम्हें सहनशील ऐसा होना चाहिए कि तुम पर लकीर न रहे। वह गुण तो जल में है। कोई आक्रमण करे काष्ठ से, कोई लकीर न रहेगी। जो भारी पत्थर भी फेंके, तो उसे भी अपनी शरण देकर छुपा देगा, सर्व गगन मण्डली, सूर्य, चन्द्र नक्षत्रों का दर्शन जल में हो सकता है; और किसी में नहीं। बस तुम समझ गए, यही तुम्हारा आदर्श है, इसके गुण कर्म स्वभाव तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल हैं (विस्तार पूर्वक किसी पुस्तक या ट्रैक्ट का रूप बन सकता है, जो-जो बातें समझाई—) (नोटः—ट्रैक्ट·····छप चुका है 'साधक का आदर्श'।)

१२-३-६५ शुक्रवार फागुन शुक्ला नवमी सं. २०२१ वि.

आध्यात्मिक मनन चिंतन

प्रभुआश्रित ! स्वामी वह होता है जो भोग में अनासक्त रहे, और कर्म में निर्लेप रहे, अर्थात् भोग कर्म तो इन्द्रियां करती हैं, और आत्मा की शक्ति से करती हैं। संकल्प विकल्प करता है मन, और संस्कारों की स्मृति करता है चित्त। यह सब आत्मा की दी हुई गति से होता है—तो इनका परिणाम है, हर्ष या शोक। आत्मा गति देने से अपने को इन्द्रियों के किए काम में हर्ष, शोक न मान, चाहे भोग हो या कर्म। सब भोग और कर्म करती तो इन्द्रियां हैं, मगर निर्णय बुद्धि करती है। निर्णय के बाद ही सब भोग कर्म आचरण में आते हैं। आसक्त और लिपायमान दास होता है। इस दासता से बचाने वाला विवेक है, जो बुद्धि स्थित रखता है, इस से ही आत्मा आत्मस्थ रहती है। व्युत्थान में बुद्धि, इन्द्रियां मन काम करते हैं। चौबीस घन्टे तो आत्मा आत्मस्थ नहीं रह सकता, व्युत्थान तो अवश्य होगा। जब शरीर पोषण रक्षण के लिए कर्म होने जरूरी हैं, जब तक देह के साथ सम्बन्ध है, देह का संसार से। इस लिए कर्म तो जरूर करने पड़ेंगे, परन्तु विवेक ऐसी शक्ति है, जो आत्मा का आत्मत्व स्थिर रखता है।

अविवेक से आत्मा अपने को कर्ता भोक्ता मानती है। विवेक से ही वैराग्य पक्का होता है। फिर विवेक कैसे पैदा किया जावे ? बार-बार विचार, हर समय यही मनन करते रहने से, कि सब के कर्म, इन्द्रियां मन, आदि के, स्वाभाविक हैं। वह तो अवश्य होते रहते हैं, और बन्द नहीं होंगे। आत्मा को गति देना भी स्वाभाविक है। विवेक एक ब्रेक या लगाम है, जो उनको कुमार्ग से बचाती है। वास्तव में यही मनन का इसी बात का विचार और सोच करते रहना ही आध्यात्मिक विषय है। दूसरे मनन चिंतन आत्मा के सम्बन्धी नहीं। पवित्रता सहनशीलता और सत्यता की प्राप्ति तो इसी से होगी।

१४-३-६५ फाल्गुन शुक्ला द्वादशी

पं० श्रीराम जी की तामील (आज्ञा पालन) में

प्रभु आश्रित ! वर्ष भर में सौर दिवस और चन्द्र तिथियां आती हैं, सूर्य के बेसाख ज्येष्ठ मास गिने जाते हैं, और चन्द्रमा की अमावस्या, पूर्णिमा से सुदी बदी मानी जाती हैं। चन्द्रमा आह्लाद जनक है, रात्रि के अंधकार में प्रकाश करता है। सब खाद्यान्न पदार्थों में जीवन रस भरता है। इसलिए उसकी अमावस्या और

पूर्णिमा को लोग बड़ा महत्व देते हैं। वर्ष में बारह पूर्णिमा आती हैं। चन्द्रमा को तो यह आवागमन चक्र जीवात्मा की न्याई लगा रहता है। इसलिए जीवात्मा का विशेष सम्बन्धी है। ज्ञान और शिक्षा देने वाला है। सब प्रकार परिपूर्णां होने से पूर्णमाशी की पूर्णिमा कहते हैं।

पूर्णिमाओं की विशेषताए :—स्नानी पूर्णिमा, ज्ञानी पूर्णिमा, कर्म यज्ञ (दानी) पूर्णिमा, ध्यानी पूर्णिमा, या अन्न पूर्णा पूर्णिमा, ऐसे तो हिन्दू जाति के लोग हर पूर्णिमा पर नदी स्नान को पुण्य समझते हैं, मगर बैशाख पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, माघ पूर्णिमा से बैशाख स्नान, कार्तिक स्नान, माघ स्नान के नाम मास-मास भर सूर्य उदय से पहले प्रभात काल में लोग बड़ी श्रद्धा और तप से स्नान करते पाठ पूजा में बैठते हैं। पुण्य नाम प्रसन्नता का भी है। जो अन्त:करण की पवित्रता का चिह्न है। उन मासों में विशेष-विशेष नक्षत्रों का प्रकाश खुले बहते जल में सारी रात पड़ता रहता है। जिसके कारण इन दिनों स्नान करने से शरीर नीरोग और मन प्रसन्न बहुत होता है। भजन ध्यान में एकाग्रता जल्दी बनती हैं, यह वैज्ञानिक

बात है ।

श्रावणी पूर्णिमा से ब्राह्मण विद्वान् वेद विद्या का ज्ञान दान उपदेश पढ़ाना छात्रों श्रोताओं को आरम्भ करते हैं । श्रोताओं तथा ब्रह्मचारियों को रक्षा बंधन ब्रह्मचर्य का व्रत करा कर अध्ययन करते कराते हैं ।

चातुर्मासी पूर्णिमा से यज्ञ कर्म आरंभ होते हैं । वर्षा ऋतु में यज्ञ कर्म उपदेश और सेवा सत्कार दान गृहस्थी करते कराते हैं । ज्ञानी लोग श्राद्ध पूर्णिमा से बैसाख पूर्णिमा तक अभ्यास करते कराते हैं । यह तो है एक सामान्य रूप । पूर्णिमा का दूसरा रूप है, शिक्षाप्रद उन्नति करने वालों के लिए । जड़-जगत में सूर्य प्रकाश और ताप में पूर्ण है, पृथिवी प्रकाश रहित, पृथिवी प्रकाश से पूर्ण रहित है । तीसरा इनके मध्य में है, चन्द्रमा जिस दिन उन्नत होकर पूर्ण बनता है। जैसे जीवात्मा, प्रकाश रहित प्रकृति और पूर्ण प्रकाश मान परमेश्बर के मध्य में है और पूर्ण होने के प्रकाश में और शीतलता शांत होने का इच्छुक है । तो यह शिक्षा ले । अपूर्ण चन्द्रमा निरन्तर सतत जब सूर्य नारायण की शरण लेता पकड़ता है, बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमा पर पूर्ण प्रकाश पूर्ण शीतलता को विभूति को प्राप्त कर लेता है ।

(२) पूर्ण हो जाने पर जब अपने स्वामी गुरु की शरण
छोड़ उन्मुख हो जाने लगता है, उसकी विभूतियां तेज
शीतलता, पूर्णिमा का ह्रास आरंभ हो जाता है। अन्त
में उसकी प्रकाश आदि विभूतियों का नाश हो जाता है

(३) सूर्य पूर्ण होते हुए भी गर्व न करे जबकि इस
प्रकाश की तुलना करने वाला भी कोई नहीं रहा
ठीक अमावस अन्धकार पूर्ण तिथि पर उसे ग्रहण ल
जाता है।

(४) चन्द्रमा भी अपनी पूर्णता का गर्व न करे कि ठी
पूर्णिमा को ग्रहण लग जाता है। इस लिए अपन
विभूतियों की रक्षा के लिए निरन्तर अपने प्रकाशमा
प्रभु की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करता रहे कि
काल भी त्याग न करे।

(५) जल का देवता चन्द्रमा है। पूर्णिमा पर सागर
भी ज्वार भाटा में बल आता है, और सागर से अ
उछलने लगता है! पूर्ण चन्द्रमा की ओर जाना मिल
चाहता है। यह है अभ्यासियों के लिए वैराग्य
चिन्ह। जब अभ्यास से ज्ञान विवेक परिपक्व होता है
तो उसे वैराग्य हो जाता है।

अब रहा यह पर्व होली का अन्न पूर्णिमा, पूर्णि

का। किसान शूद्र वर्ग की सहायता से कार्तिक में बीज बोते हैं—अनाज का, जो सब मनुष्यों पशुओं का जीवन आधार है। वह बीज अंकुरित होते हुए भूमि से बाहर आता फटता है। चन्द्रमा उस में रस भरता रहता है, पौदे, पाती, फल अन्त में बढ़ते रहते हैं। इस होली के दिन जिसका अर्थ है—हो+ली, जो कुछ होना था, किसान के भाग्य का, या मानव और पशु समाज के भाग्य का, वह पूर्ण हो गया। आज के बाद पौदा न बढ़ेगा।न ही उसमें अधिक रस, माधुर्य मिठास भरेगा। अब सूर्य नारायण उनको पकायेगा। अपना सौन्दर्य बहार अपना भरेगा। पकाना और सौन्दर्य भरना, पौधों को सुखाना अर्थात् कोमलता से कठोरता में लाना, कि वह अनाज तो मनुष्यों का आधार बने और भूसा पशुओं के जीवन का आधार बने।

फिर लोगों के रंग-रलियां खुशियां मनाना, रंग भरना होली फाग खेलना किस लिए ? यह त्योहार शूद वर्ग का है। उनकी कमाई परिश्रम, बीजना प्रत्यक्ष हो गई और आगे पकने की बहार की आशा बन गई।

इस उत्साह से वह रंग-रलियां मनाते और दौड़-धूप कूद उछल इस लिए करते हैं कि यह ऋतु परिवर्तन

है। इसमें आराम के परमाणु भरे हैं। इस मास चेत में शरीर आलसी बनता है और उबासियां बहुत आती हैं, उसे वदलने के लिए फाग होली कूदते दौड़ते हैं। वाणी की अश्लीलता तो अज्ञान और पतन है। होली का महत्व अन्न पूर्णिमा है। यह ऋतु घूमने से ही स्वास्थ्य लाती है।

शरद पूर्णिमा से (अनवरत) (अखंड) यज्ञ मास भर ऋग्वेद से करने से बल और तेज की प्राप्ति होती है, और माघ पूर्णिमासे एक मास तिल की निरंतर आहुति देने से पाप वासनाएं दग्ध होती हैं। गह है पूर्णमाशियों का महत्व स्नान के साथ।

१६-३-६५ मंगलवार फाल्गुन शुक्ला चौदस
सं० २०२१ वि०

प्रभु आश्रित ! क्या पता कौन सा शब्द किस समय किसको क्या रूप बन कर लग जाये ? यह शक्ति उस शब्द जड़ की नहीं होती। वह विधाता से प्रेरित एवं प्रकाश या ज्योति या विद्युत् से जीवित जान और प्राण वाला शब्द होता है। चाहे वह शब्द साधारण बोल में निकला हो। अथवा किसी ने किसी और मन्तव्य से कहा हो या वह क्रोध से ही निकल पड़ा या लिखा गया हो। जब वह शब्द किसी के हृदयांगम या

चोट कर गया बस समझो वह शब्द प्रभु प्रेरित था। वह बीज भूमि ने स्वीकार कर लिया। अब वह अपने समय पर फूट कर पौधा वृक्ष भी फल के रूप में प्रकट होगा ही। इस फल तक के समय का ज्ञाता भी वही विधाता है। तुम अब उसकी चिंता छोड़ दो. भगवान "कर्ता" है ! सृष्टि कर्ता कर्मफल दाता है।

१८-३-६५ बुधवार पूर्णिमा सं० २०२१ वि०

प्रभु आश्रित ! प्रकाश चाहते हो, तो जितना प्रकाश चाहते हो, उस प्रकाश के लिए उतना ऊंचा स्थान बनाओ। तुम चाहते हो कि मेरे अन्दर मकान में भूमि आंगन आदि में प्रकाश रहे, अधिक जरूरत नहीं तो तीन चार फुट पर चौकी रख लो या जाला बना लो, या खूंटा गाड़ दो, इस पर दीपक रख दो। यदि नीचे से ऊपर तक छत तक प्रकाश चाहते हो, तो छत के पास स्थान बना लो। यदि अन्दर और बाहर एक जैसा प्रकाश चाहते हो तो दरवाजा में लैम्प टांग दो, यदि तुम बिजली का बड़ा प्रकाश चाहते हो, यदि तुम को प्रतिदिन नया कष्ट न करना पड़े, तो बिजली के लिए अपनी दीवारों में फिटिंग करनी पड़ेगी, फिर जितना प्रकाश चाहो, ज़ीरो (बिन्दु) का या हजार

कैंडल का, वैसा बल्ब लगा लो। बिजलीघर से जब सम्बन्ध जुड़ गया, फिर तुम्हारे बल्ब पर निर्भर है। यदि तुम बिना फिटिंग कराए बिना खर्च और पैसा लगाए, मुफ्त की चाहते हो, सर्वत्र अपने कामों के लिए जहां जाओ, कितनी दूर चले जाओ, वह प्रकाश तुम्हारे साथ रहे तो वह प्रकाश प्राकृतिक सूर्य देवता का है, उसके लिए सूर्य प्रकाश और तुम्हारी आंख के मध्य में कोई पर्दा न रहे, यहां तक कि तुम्हारी आंख का पर्दा भी खुला रहे। यदि और तो सब पर्दे आंखों के सामने वाले तो हटा दिए हैं, मगर अपनी आंखों के पलकों का पर्दा अभी डाला हुआ है, तो सब हटे हुए पर्दे बेकार जावेंगे।

तुम्हारी अपनी आंख का पर्दा छोटा अति छोटा सा ही रुकावट बन गया। अगर पलकों का पर्दा भी नहीं रहा, और तुम्हारी आंखों में मोतियाबिन्द आ गया है, तो एक जरा भर बिन्दु तुम्हें बिल्कुल वञ्चित कर देगी। मुफ्त का नाम सुनकर दिल तो ललचाता है, मगर इस असूल्य के लिए अपने अहंकार को भी निर्मूल करना पड़ता है। यह दीवारों के पर्दे क्या हैं—मैं और तू। मजहबी साम्प्रदायिक दीवारें, मत-भेद, आंख का पर्दा,

स्वार्थी के स्वार्थ से आसक्ति पैदा हुई है, और आसक्ति से कठोरता, द्वेष । मोतियाबिन्द क्या है ? घृणा और ईर्ष्या । आसक्ति होती है, विषय, वस्तु; व्यक्ति में, और मोतियाबिन्द दो प्रकार का है—श्वेत और काला । काला बड़ा भयानक दुःखदाई होता है, इसे ईर्ष्या कहते हैं, किसी की वृद्धि उन्नति को न देख सकना, न सहन कर सकना, और श्वेत है, घृणा । घृणा अहंकार से और ईर्ष्या लोभ से पैदा होते हैं । इन तीनों पर्दों के हट जाने से सर्वत्र अन्दर बाहर जहां जाओ, दूर या नजदीक उसी भगवान के प्रकाश में निर्भय हो कर विचरोगे । इसी लिए वेद भगवान ने कहा—ओ३म् त्वंनो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्य अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ।

सामवेद मं० ६ ॥

१८-३-६५ सोमवार ५ चैत

प्रभु के आश्रित का स्वरूप दृश्य रूप में ।

प्रभु कृपा महान्

प्रभु आश्रित ! तुम रोज कहते हो, प्रार्थना में ज़ारी करते हो, कि जब मैं तेरा आश्रित हूं और तू मेरा प्रभु है: महान् सर्वशक्तिमान् है, तो क्या नहीं दे सकता । तू तो क्षण भर में पापियों पतितों का त्राण

कर उनको वैराग्य प्रदान कर देता है। तो आज तुझे प्रत्यक्ष दिखा कर समझाते हैं। तेरी अपने आश्रित के रूप की तसल्ली हो जावे।

पृथिवी और उसकी उपज में दृष्टि कर। जब बीज भूमि माता की शरण में अर्पित अपने आप को करते हैं और इसी के आश्रित रहते हैं। पहली बात तो यह समझ–अर्पित और शरणागत हुआ करता है, ज्ञान से, और आश्रित होता है, स्वाभाविक स्वतः सिद्ध अज्ञान और ज्ञान से भी। अर्पित तो चाहता है वही रूप अर्थात् एक रूप हो जाना और उसी के नाम से कहलाना, जैसे लोहा अग्नि में अर्पित हुआ, वह अग्नि के रूप में प्रकट हो रहा है। एक गरीब कन्या राजा के अर्पित हो गई, राजा को वर लिया तथा राजा ने उसे वर लिया, वह राज माता रानी राज्य की स्वामिनी बन गई।

शरणागत चाहता है, बहुत होना, एक से अनेक होना। और आश्रित होना है, सदा स्थिर रहना, अपने आप में स्थिर रहना, अमर होना। जिसका आश्रित है, उसी सहारे स्थिर रहना, वह एक और उसके फल अनेक। एक स्वयं तो रहे स्थिर और फल आए परोपकार के काम में। भूमि में अनेक प्रकार की औषधि, बनस्पति के

बीज पड़े। यूं समझो, औषधियां और बनस्पतियां तो हैं जीवों की योनियां, व बीज है संस्कार। समस्त अनाज गेंहू, जौ, चना, ज्वार, बाजरा आदि आदि योनियों के बीज पड़े, भूमि माता की शरण ली, भूमि ने स्वीकार कर लिए। भूमि माता ने उनको उगाया, बढ़ाया। वह एक बीज अनेक हो गया। वह भी आश्रित रहा, मगर उस पौधे को पशुओं के लताडने और खाए जाने का भी डर रहा। उसका सूंडा (जड़ें) एक दो इंच भूमि की शरण में थे। भूमि के अन्दर अंकुर का सम्बन्ध दो इंच रहा। अन्दर से उनको उतना जल प्राप्त रहा, जितना भूमि का वत्र जमा था। जब तक उसे बाहर से कुआं, नहर या वर्षा का जल ठीक जरूरत समय न मिले वह सड़ जायगा, मुर्झा जायगा सूख जायगा। यह एक प्रकार का आश्रित है, जिसे पकने के लिए अधिक क्या अपितु, सारी बाहर से सहायता की जरूरत है। भूमि माता में तो अथाह जल था, मगर उस आश्रित पौधे की जड़ें खैंच नहीं सकतीं। अब यह पक कर अपने आप सूख जायगा, और फल अनेक होकर परोपकार में लग जावेंगे। वह पौधा सदा के लिए स्थिर नहीं रहेगा। बाहर का जल उसे हरा-भरा रखेगा। उसके पत्ते भारी गर्मी से भी गर्म न होंगे।

यह जल है भक्ति। पशुओं से बचाव हेतु किसान उसे बाड़ लगायेगा, यह है ज्ञान की बाड़।

दूसरे हैं वनस्पतियों योनियों के बीज। बीज डाला भूमि की शरण गया, अर्पित हो गया। अब किसान ने उस बीज को बोकर उसके चारों ओर बाड़ लगा दिया, पशुओं से बचाव हेतु। वह बीज था, संगतरा, आम अनार या मालटा का। जब बीज पौधा बन गया, तब भी वैसे पानी बाहर से कुआ, नहर, वर्षा का देना पड़ा, और बाड़ चलहा। वैसे खड़ा रहा। जब चलहा के ऊपर पहुंच गया, तना भी अपने सहारे हो गया, उसके पत्ते पशु के मुख पहुंचने से ऊपर पहुंच गये, तब चलहा हटा दिया, मगर फिर भी उसे कभी-कभी बाहर से कुआं नहर वर्षा का पानी देता रहा। जब जड़ें भूमि से पानी खेंचने तक पहुंच गई, तब बाहर का पानी देना छोड़ दिया, नीचे ऊपर वर्षा प्राकृतिक जल के आश्रित हो गया। तब वह स्थिर हो गया, फल एक से अनेक हुए, वह परोपकार के काम आए, और स्वयं स्थिर रहा।

तीसरा अब पक्के वृक्ष, वह बीज बड़ पीपल आदि के भी पहले तो बाड़ में आए। जब वृक्ष बन गए तो उन्हें पानी (ज्ञान सत्संग) की जरूरत नहीं रहीं। उनकी

जड़ें शाहू (स्रोत) तक पहुंच गई, अब उन्हें कोई भय नहीं रहा।

अब तुम अपनी आश्रित पद की स्वयं जांच कर लो। तुम किस गिनती में हो ? जिसे कहा 'कोऽसि कतमोऽसि।' यदि पशु वृतियां बहुत हैं तो चलहा के अन्दर रहो। यदि नहीं रही केवल संस्कार वासना जागती है तो चलहा की जरूरत नहीं, भक्ति का जल उन्हें दूर रखेगा और यदि कोई प्रबल वासना ऐसी छुपी हुई रहती है, जो कभी-कभी बहुत व्याकुल कर देती है। तो गुरु शरण, गुरु सहवास और विवेक की बाड़ बनाओ। जब विवेक पक्का हो गया, तब किसी और की शरण की जरूरत नहीं रहेगी, प्रभु शरण ही वैराग्यवान् अनासक्त निर्लेप बना देगी। तब पीपल बड़ के समान हो जावेगा ज्यों-२ जड़ें शाहू तक फैलेंगी, त्यों-२ मन रूपी तना परिपक्व कठोर हो जायेगा, वज्र समान, पत्थर समान हो जायेगा। तब कोई विषय वासना प्रहार न कर सकेगी। जो करेगी, वह स्वयं चकनाचूर हो जायेगी। तुम्हारा यह चारदीवारी का एकांत शरीर के लिए है। मन के लिए ज्ञान की चार दीवारी है।

सब महान् पुरुषों, महात्माओं, सन्तों, भक्तों के उदाहरण तुम्हारे सामने हैं। सबको एक ही श्रेणी में

ही गिनोगे। जितनी उनके संस्कारों की पहुंच जितने शाहू (स्रोत) तक पहुंच गई, उतने वह भक्त योगी महात्मा महान् पुरुष बने। कोई बड़ के समान अपना सहारा आप, कोई पीपल के समान। कोई इन्हीं की तरह और कोई मध्य शाहू तक पहुँचे जैसे आम। कोई उससे जरा न्यून अनार, संगतरा की तरह। जिनके पीछे उनके अनुयायी अनेक बने, वह बड़ पीपल के समान अपनी जड़ों, शाख को ऊपर नीचे फैलाते हैं, और कोई मध्यम कोटि के आम आदि जो स्वयं स्थिर परन्तु उनके अनुयायी नहीं बने। जब तक विवेक स्थिर बुद्धि वैराग्य नहीं लाती, तब तक ज्ञान की बाड़ बनानी चाहिए। भोजन छादन सुख सामग्री की अनायास श्रद्धा भक्ति से प्राप्त होते रहने को पूर्ण आश्रित न मानना चाहिए। यह तो एक बाह्य चिह्न है प्रभु आश्रित होने का। आंतरिक चिह्न है, मोह, शोक से ऊपर होना, कोई चिन्ता, भय, शंका, लज्जा, क्लेश न समा सके। प्रभु अपना उतना निज ज्ञान देवें। और बाह्य तो सब प्रकृति माता की देन है।

बहरूपिया (मन हराम)

लगभग दो बजे रात। आज वह बहरूपिया जिस

की कथा 'दिव्य जीवन के साधन' नाम की पुस्तक के पहले ८–२–६२ के उपदेश में है। अब फिर आ प्रकट हुआ। तब तो बड़े ठाठ-बाठ से आया था, आज एक महात्मा बानप्रस्थी के रूप में आया।

मैं प्रभु आश्रित बोला, आइये, आइये आप फिर आ गए ?

बहुरूपिया—फिर कैसे कह दिया ? क्या आप ने मुझे कहीं देखा है ? या मैं पहले कभी आपके पास आया हूं ?

प्रभु आश्रित—हां ! हां ! तुम पहले भी मेरे तीन मास के व्रत सन् १९६१–६२ में आये थे।

बहुरूपिया—अच्छा आपने पहचान लिया, तो मैं कौन हूं ?

प्रभु आश्रित—तुम बहुरूपिया हो बालकराम, मालकराम, मानक राम। अंत में तुम ने अपना नाम मनसाराम बताया था।

बहुरूपिया—ठीक है, ठीक है।

प्रभु आश्रित—अब तो वह ठाठ-बाठ नहीं, महात्मा के रूप में आए हो। अब आप का महात्मा रूप का क्या नाम है ?

बहुरूपिया—आप मुझे पहचान तो जल्दी गए। मेरा नाम अब मन हराम है। तब तो आपके कपड़े रंगे हुए न थे, अब तो रंगे हुए पहने हुए हैं। आप ने कहा था कि व्रत इसलिए कर रहा हूं कि रंग कर तुम्हें पहनाऊंगा, तुम्हारे लिए व्रत कर रहा हूँ। अब फिर व्रत कर रहे हो।

प्रभु आश्रित—तुम तो सुन कर भाग गए थे, यह कपड़े तो योगी राज गुरु जी ने अपने गले से उतार कर मुझे पहना दिए थे अब फिर इसीलिए व्रत कर रहा हूं, कि तुम्हें पहनाऊंगा।

बहुरूपिया—मैं तो हाथ किसी के आता नहीं, तब भी तुम देखते रह गए थे, मैं लुप्त हो गया था।

प्रभु आश्रित—अब तो गुरु जी ने आज्ञा दी है, तुमको बांध कर उनके चरणों में ले जाने की।

बहुरूपिया— भला कैसे कोई मुझे बांध के ले जा सकता है। पहले तुम व्रत मेरे बांधने के लिए नहीं करते रहे ?

बहुरूपिया—तुम भी भोले हो, भूल जाते हो, मैं तो पारदर्शी हूं, यह चार दीवारी मुझे बंद रख सकती है ? तुम शरीर को बेशक इसमें बंद रख सकते हो,

मगर मैं तो तब भी कैद नहीं रहता। तुम्हें धोखा देता रहता हूं, मेरी मर्जी के मुताबिक। कभी तुम्हारी मर्जी के मुताबिक तुम्हारा साथ देता रहता हूं। तुम समझते हो मैंने बांध रखा है। मैंने तुम्हारा साथ चौबीस घंटे कभी नहीं दिया, यही तुम्हारा भोलापन है।

प्रभु आश्रित–अब तो मुझे गुरु जी ने युक्ति बतलाई है, तुमको बांध कर ले जाने की।

बहरूपिया–युक्ति...युक्...ति, कि भुगति ?

प्रभु आश्रित– नहीं नहीं भुगति नहीं युक्ति।

बहरूपिया—भुगति, मुक्ति तो सुना था, अब युक्ति तुम से सुन रहा हूं। भोगियों के लिए भुगति और योगियों के लिए मुक्ति।

प्रभु आश्रित–वह युक्ति ही मन हराम के लिए है, मुक्ति की।

बहरूपिया–मुक्ति मेरी या तुम्हारी ?

प्र० आ०–तुम्हारी भी और मेरी भी।

बह०—मेरी समझ में यह बात आई नहीं, तुम अपनी चाहो, मेरी क्यों चाहते हो ? मैं तो ऐसे कलह और शोर में खुश हूं रंग रलियां और विलास पंसद हूं, मेरी शुभेच्छा न करो।

प्र० आ०—अरे ऊत !

बह०—क्या ऊत संभल कर बोलो मैं तो दूत हूं दूत!

प्र० आ०—दूत कौन दूत यमदूत ?

बह०—हां ! हां ! यम दूत भोगियों के लिए यम का दूत और योगियों के लिए अष्टांग योग का प्रारंभक दूत यम के दूत। मेरे बिना यम कैसे पालन होगा 'अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह'

प्र० आ०—तू तो सच्चा और अच्छा दूत है, तब तो मेरा यमदूत बन जा। आओ मित्रता गांठ लें।

बह०—मैं तो सब का मित्र हूं, भोगियों से पूछ, मित्र हूं या शत्रु। सब ऐश व आराम भोग विलास के सामान उन को प्राप्त कराता हूं। योगी मुझे शत्रु समझते हैं। मेरे साथ मित्रता बनावे तो दूत बन कर उनको भी मन मानी शांति दूं। इन्द्रियां जागती हैं, तो वह मुझ को बांधती हैं, मैं जागता हूं, तो इन्द्रियों को बांध लेता हूं।

प्र० आ०—यह कैसे ? तू जागता है, तभी तो भोगियों को ऐश करवाता है।

बह०—नहीं-नहीं यही तो बेसमझी है जब इन्द्रियां जागती हैं ? कब ? जब विषय उन के सामने आते हैं। तब मेरी आंखें अंधी हो जाती हैं।

और वह मुझे घसीट ले जाती हैं और जब मैं जागता हूँ, तब इन्द्रियां मेरे बस में होती हैं। अच्छा अब मैं जरा थक गया हूं, मुझे सोने दे, मगर मुझे जगाना नहीं। कुछ देर गुजरी ! सब काम तपस्या करके, प्रभु आश्रित ने सोचा मन का जागना अच्छा है, इस का सो जाना तो ठीक नहीं। रात के तीन बजे थे, रक्षा मंत्री श्री दतात्रेय ने* आवाज दी...'ओ...म् सावधान' ऐसी। तभी सुहावनी मन मोहक सुरीली तान से आवाज ने मन हराम को जगा दिया, खड़ा हो गया और कहा सच तुझे उत्तम युक्ति गुरु ने मेरे जागे रहने की सिखायी। भैय्या बस यही गुर है मेरे बांधने और जगाने का। जब मैं हरामी बनूं तब तुरन्त यही आवाज लगा दो। मैं सावधान तुम्हारी ओर आ जाऊंगा। सदा मुझ पर दृष्टि रखो। दृष्टि से प्रमाद किया और मैं पार दर्शी जहां चाहा निकल गया।

प्र० आ०—अब तो तुमने मुझे 'भय्या' कह दिया, अब मेरा भय्या बन कर रहना।

बह०—जानते हो भय्या कौन होता है ?

प्र० आ०—भाई को भय्या कहते हैं।

---

* दत्तात्रेय उन दिनों वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर में चौकीदार का नाम था।

बह०—भय्या नाम से सब काम कराए जाते हैं। सुन ले, याद रख लो किसी की रसोई बनाने वाला भय्या, किसी सेठ के रसीद पर्चा, हुंडी डाक ले आने जाने वाला अर्दली का नाम भय्या, किसी कारखाना के चौकीदारी का काम करने वाला भय्या, किसी के टांगा का साईस भय्या, कहीं भय दिलाने वाला भय्या कहीं भार उठाने वाला भय्या, और भाई बनकर आने वाला भय्या अब हम तुम भय्या बन गए जब जगाओ। जब किसी काम से मनाही करो, बस बोल दिया करो 'ओं...ओं..... सावधान, ओ३म् सावधान'। अब मेरा नाम बन गया, हनुमान हनुमान...।

१९-३-६५ शुक्रवार चैत्र कृष्णा द्वितीया सं० २०२१ वि०

(व्रत) उपदेश से आदर्श श्रेष्ठतर है

प्रभु आश्रित ! लोग कहते हैं, सब देव सभा समाजें सो गई हैं। मैं कहता हूँ जाग रही हैं। पर सोते-सोते लेटे लेटे लोग कहते हैं। समाजें बोलती तो बहुत हैं, मगर करती कुछ नहीं। मैं कहता हूं, नहीं। बोलती तो नहीं करती हैं, कैसे ? स्वप्न में जोर से चिल्लाती बुडबुडाती हैं, और स्वप्न में ही काम करती हैं बच्चों को मां जगाती है, कि बेटा उठो सूर्य निकल आया।

बच्चा बोलता है । मां ! सोने से जाग गया हूं, पर उठ नहीं सकता, आंखें नहीं खुलती । पलक मल गगेंयों स लिपकर बंद हैं । वही हाल सभा समाजों का है । दृष्टि बन्द है, मल स्वार्थ पलकों को लिपाय कर रहा है । मां के पास तो बच्चा उठ कर जा नहीं सकता, उठे और चले तब जब वह जागता हो और ग्रांखें खुली हुई हों अब तो माता जा कर आंखों को धोती है, तब आंखें खुल गई, उठता है, चलता है । दौड़ कर काम करता है ।

वेद माता अब सभाओं के पास कैसे जाए ? विद्वानों ब्राह्मणों, उपदेशकों के द्वारा वेद उपदेश सुनाने । कमी यह है वह जाते हैं, सुनाने, जगाने जैसे मां ने ग्रावाज दे जगाया ! बस । सत्संग तो जगाता है, आगे विद्वान् माता, हितकारी माता बन कर हाथ से धोए अर्थात् आचरण कराए, साधना कराए, जिससे आंख की मैल धुल कर आंख खोल दें । और लोग फिर सुधार पुरुषार्थ में लग जावें ।

यह तो उदाहरण है बाहर की आंखों का । खुलनी तो ग्रन्दर की आंख हैं (मन की आंखें खोल रे बाबा,

मन की आंखें खोल) उसकी मल का नाम है मोतिया-बिन्द, न समीप दिखाई दे न दूर। स्वार्थ, ईर्ष्या, से अति समीप मां बाप, भाई बहन की बढ़ती को नहीं देख सकता। अहंकार, घृणा से दूर की नहीं सोच सकता (भविष्य परलोक की) उन के लिए चाहिए डाक्टर। साधारण डाक्टर नहीं जो फिजीशन हैं या आंखों में जिंक या कास्टिक से काम लेने वाले हैं। यहां सर्जन अ्राप्रेटर चाहिये विशेषज्ञ हो, (Specialist) हो। परन्तु आज के लोग, या समाजें नश्तर (खंडन) बिन्दु हटाने वाले को पसंद नहीं करते। सहल और मीठा देर तक चलने वाला इलाज पसन्द करते हैं। वह है विधि भक्ति मार्ग की, जो ज्ञान युक्त हो। जैसे कोई ज्ञानी संत हो और भक्त भी हो। आदर्श उपदेश से अधिक काम करता है, Examp'e is better then precept.

२०-३-६५ शनिवार चैत्र कृष्णा तृतीया सं. २०२१ वि.

बिना पैसे का यज्ञ

प्रभु आश्रित ! यज्ञ अ्रनेक प्रकार के हैं, वह सब के सब कल्याणकारी होते हैं, चाहे वह उत् यज्ञ हो, या अव यज्ञ हो, चाहे वह भौतिक हो, द्रव्य यज्ञ हो, या अ्राध्यात्मिक यज्ञ हो। आध्यात्मिक यज्ञ से उत्तम इस

लिए है, इससे आत्म कल्याण होता है। आत्म यज्ञ से आत्म बल पैदा होता है। आत्म बल चरित्र की रक्षा करता है। इन दो बलों के मिलाप से मानव जीवन का शीघ्र परिवर्तन हो सकता है, और शांत वातावरण पैदा किया जा सकता है।

एक विद्वान संत-स्वभाव चरित्रवान थे। कहीं यज्ञ हो रहा था, देखकर बड़े प्रसन्न हुए बैठ गए। समाप्ति पर उन्होंने यज्ञ और यज्ञ कर्ताओं की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि यज्ञ मनुष्य का धर्म-कर्महै जो नहीं करता वह अन्धेरे में रहता है। वास्तविक सुख शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। एक सज्जन ने प्रश्न किया,महाराज! आजकल के जमाने में शुद्ध घी नहीं मिलता, और सामग्री की औषधियां पुरानी हैं। इस यज्ञ करने से क्या लाभ ? उल्टा संसार को हानि पहुंचती है, इससे तो न करना अच्छा है। दूसरा बोला—लोग तो भूखे मर रहे हैं और इधर घी जलाते हैं, क्या पाप नहीं ? तीसरा बोला—देश, नगर में कितने कितने कल कारखाने, मोटर कारों के पैट्रोल का धुआं बदबूदार गैस फैलाते हैं। हमारे इस थोड़े यज्ञ का क्या लाभ ? संत बोले ! अपने न करने

के पाप पर पर्दा डालनें के लिए यह सब युक्तियां घड़ रहे हो, या करने की सामर्थ्य नहीं है ? यदि तुम यज्ञ को उत्तम उपकारी समझते हो और करना भी चाहते हो, मगर इस यज्ञ को नहीं करना चाहते, तो मैं सुगम विधि बताता हूं। जिनको सामर्थ्य नहीं, वह भी कर सके, और सामर्थ्यवान जो युक्ति खोट, भूख और गैसों की देते हैं, वह भी कर सकें। सब बोल पड़ें करना तो हम चाहते हैं, कोई और यज्ञ जो हमारे ग्रौर संसार के लिए भी लाभकारी हो और लगता भी कुछ नहीं, हम जरूर करेंगे, जरूर करेंगे। संत बोले, यह लोग सामग्री घी का यज्ञ हाथ द्वारा कर रहे हैं, तुम आंख द्वारा आत्मा का यज्ञ करो, ग्रांख का। इनके यज्ञ की आहूति का प्रभाव सब प्राणियों को मिलता है, पहुँचता है। तुम सबको प्रेम और मित्र की दृष्टि से देखो। इनकी ग्राहुति मित्र, शत्रु, हिन्दू, मुसलमान को बिना भेदभाव समान रूप से पहुँचती है, तुम भी बिना भेदभाव धर्म या मित्र शत्रु के सब प्राणियों को स्नेह और मित्र भाव दृष्टि से देखो ग्रौर जैसे गन्दगी कहीं भी पड़ी हो, उधर तुम लोग भाव दृष्टि नहीं करते, जैसे किसी के गंद दोष पर दृष्टि मत करो। बस यही आंख का यज्ञ तुम करो,

और कान का यज्ञ करो, तो तुम किसी की निन्दा सुन कर उसे अपने तक रहने दो, आगे मत सुनाओ, और जो उपदेश सुना है—मयि श्रुतः मयि एवमस्तु, अपने में स्थिर रखो , वाणी का यज्ञ करो, तो मीठा बोलो, सत्य को भी कड़वा मत बोलो और किसी के दोष को सुनने और देखने को वाणी से मत उघाड़ो। बस यही यज्ञ बिना पैसे के हो सकते हैं। यदि तुम्हारी नियत ठीक हैं, तो करो, इसी से तुम्हारा और तुम्हारे संसर्गियों, जनता का कल्याण हो जाएगा। मन में बदले की भावना, और घनिष्ट चिंतन न करो, अपितु किसी की बुराई को मन में न रखो। यह मन का यज्ञ है।

"अदृष्ट भोग"

प्रभु आश्रित ! परमेश्वर सर्वव्यापक है, और सर्वशक्तिमान समग्र ऐश्वर्य युक्त भी है, तुम विचारो। वह सर्वव्यापक किस रूप में प्रत्येक प्राणी के साथ रहता है ? वह परमेश्वर सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान समग्र ऐश्वर्य युक्त रहता है—कर्म फल दाता के रूप में। सब के साथ सब में। क्योंकि मनुष्य इतर प्राणी चौबीस घन्टों में कर्म भी नये करेंगे और फल भी पूर्व कर्मों का सुख या दुःखके रूप में भोगते रहेंगे। कोई क्षण इन

दो से खाली न गुजरेगा। जहां जाओ, जहां रहो, जहां कार्य करो। जागो या सोवो, बैठो या चलो वह इसी रूप में साथ रहता है। चलते-चलते ठोकर खा गया— ऐसी चोट आयी कि अचेत हो गया। रक्त निकल आया। मनुष्य तो दुःख की सामग्री साथ नहीं लाया था मगर पर कर्मफल दाता साथ था और उसकी सामग्री में भी वह मौजूद था। जिस काल जिस स्थान में फल जिस साधन से मिलना था, उसमें भी व्यापक था। इस लिए वेद ने कहा :—

ओ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शंन्नः कुरू प्रजाभ्यो ऽभयं नः पशुभ्यः ।। य० २१/२२

वह कर्म फल दाता सबको अदृष्ट फल देता है, वह ऐसा विश्वम्भर है, विश्वास चाहिए।

तुम रोटी खा रहे हो, तुमने इरादा से ग्रास नहीं गिराया मगर तुम्हारे ग्रास तोड़ने और मुख तक ले जाने में एक तिल भर अंश ग्रास से नीचे गिर पड़ा, जिसकी तुमको ज्ञान भी नहीं। इसी तिल भर पर कितनी ही च्योंटियां अपना-अपना भाग तोड़-तोड़कर चलती बनीं, कई एकत्रित होकर खाने लगीं। तुमने कई बार अनुभव किया होगा। यही अदृष्ट था उनका। तुम भी अपना ऐसा ही समझो और ऐसा तुम्हारे लिए

बनाए भोग में औरों का भाग शामिल है। जिसको तुम बुला कर खिलाते हो, इसका भी भोग है और जो अकस्मात अपने आप आ जाता है, वह पके हुए पर भागीदार बनता है। तुम न भी देना चाहो, कठोरता से बोलो, मगर वह हठ करके तुम्हारे दर पर बैठ ही जावेगा, ले के छोड़ेगा। उसका भी अपना भोग तुम्हारे पास था। केवल समझने की जरूरत है। तुम्हारा संग्रह केवल तुम्हारे लिए नहीं होता, इस में कई भागीदार होते हैं। किसान अन्न बोता है। सैकड़ों मन अन्न घर ले जा कर सम्भाल कर रखता है, तो क्या सारे दाने उसी के भोग के होते हैं? अब उसका भोग इसका नहीं, पैसे का है।

२१-३-६५ चैत्र कृ० चतुर्थी २०२१ वि०

विश्वास और आजमाईश

प्रभु आश्रित ! उन्नति का गुरु है, विश्वास और आजमयश (परीक्षा), विशेषकर आध्यात्मिक मार्ग में। या तो वेद शास्त्र ऋषि मुनियों के वचनों पर पूर्ण विश्वास रखे और चलता जाए। अगर विश्वास नहीं जमाता और फिर शंका होती है, और उन्नति भी चाहता है जो तर्क-वितर्क में न पड़े। स्वयं आजमाइश

करने लग जाए। पुरुषार्थ आचरण करने लग जाए। यह काम है श्रद्धा का। अगर श्रद्धा नहीं है, तो अध्यात्मिक मार्ग में क्या, इस मार्ग में पग ही नहीं रख सकता। उदाहरण—योग शास्त्र में आया, ओ३म् के जाप से आत्म दर्शन भी होता है, और सब रुकावटें अंतराय भी दूर हो जाते हैं।

ततः प्रत्यक् चेतनाधि पिग्रय्योप्यलराया भावश्च।

योग दर्शन—१-२९

यदि विश्वाश है, तो लग जाये, यदि विश्वास नहीं जमता, तो आजमा ले। करने लग जाये, मगर उस विधि विधान से करे, जैसा उस शास्त्र ने कहा है। नहीं तो आजमा न सकेगा।

कोई काम शीघ्र फल देते हैं, कोई काम देर से फल दिखाते हैं। किसी ने कहा चुल्हे पर, सब्जी चावल चढ़ाने की बजाय कूकर में १५ मिनट में तैयार हो जाती है, घंटों लगाने के स्थान पर। अब आजमाने वाले ने आजमाया तो १५ मिनट में मालूम हो गया। किसी ने कहा, आम अपना बोया जाये तो प्रति वर्ष अनगिणत फल खाये और धन भी कमाये। लोगों की सेवा भी कर सकता है। सुनने वाले ने बो दिया, मगर

पानी नहीं दिया, वह कुछ ही दिनों में सूख गया, विश्वास खो बैठा। विधान से करे, पानी देता रहे, रक्षा करता रहे निरन्तर, तो उसे ५ वर्ष लग जावेंगे, तब उसे फल मिलेगा। जो काम बहुत ऊंचा होता है, उसके लिए दिल भी महान् करना पड़ता है। समय भी महान लगता है, महनत भी महान करनी पड़ती है।

२५-३-६५ वीरवार चैत्र अष्टमी २०२१ वि०

साधना में रुकावटें

प्रभु आश्रित ! जैसे स्थूल शरीर के लिए खाद्य पदार्थों की शुद्धि की जाती है, ऐसे सूक्ष्म शरीर, अन्तःकरण की शुद्धि भी की जाती है। जैसे स्थूल शरीर के पदार्थों की शुद्धि छाननी द्वारा की जाती है। अनाज गेहूं, चावल आदि जिनमें मिट्टी कंकड़ मिले होते हैं, या आटा जिसमें छान होता है। यह छाननी तो छिद्र वाली होती है और सूक्ष्म शरीर की शुद्धि की छाननी का नाम "साधना" है, जो छिद्र रहित हो, तब अन्तःकरण पवित्र होता है। साधना ही छिद्र वाली हो, तब अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता।

अब सवाल होता है, साधना में कौन-कौन छिद्र होते हैं ? और साधना से किन-किन को पवित्र करना

होता है, और वह साधना कौनसी है ? जितने पाप कर्म, पाप वृत्तियां हैं, वह सब छिद्र कहलाते हैं। चित्त, मन, बुद्धि, आंख कान, वाणी को पवित्र होना है। मुख्य साधना नाम तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान। साधनपाद सूत्र—तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानीयति क्रिया योगः ॥

इनको कर्म, ज्ञान उपासना (भक्ति) भी कह सकते हैं। इनमें से एक को मुख्य और दूसरे को गौण मगर रहेंगे तीनों, नाम होगा एक का। जैसे पेट की भूख निवृति का साधन है, रोटी या आटा, परन्तु वह आप बिना पानी और आग के रोटी न बना सकेगा। इसी तरह से तप को मुख्य साधन बनायेगा, तो स्वाध्याय और प्रणिधान को साथ मिलाना पड़ेगा। स्वाध्याय को मुख्य साधन बनायेगा, तो तप और प्रणिधान साथ जोड़ना पड़ेगा, और यदि प्रणिधान को मुख्य साधन बनाएगा तो तप और स्वाध्याय के योग से सफल होगा। इनका फल है, उत्पन्न करने वाले अविद्या अस्मिता, राग द्वेष, अभिनिवेश का ह्रास करना और समाधि को प्राप्त कराना। समाधि भावनार्थः क्लेशतनू करणार्थश्च। साधनपाद सूत्र—२

तप का मोटा रूप है, सहनशील होना, द्वन्द्व का सहना। हित, परिमित और निमित्त और शुद्ध आहार अर्थात् हिंसा रहित और सात्विक भावों को उत्पन्न करने वाला।

स्वाध्याय तीन प्रकार का होता है। वेद शास्त्र का अध्ययन तो धर्म और ब्रह्म विद्या की शिक्षा दे, और जप, (२) नेचर (प्रकृति) का सृष्टि की रचना में प्रत्येक तत्व, पदार्थ, प्राणी के गुण, कर्म, स्वभाव को पढ़ना, दृष्टिगोचर कर मस्तिष्क में भरना और हृदय में उसको उतारना, (३) अपने जीवन का प्रतिदिन भूत, वर्तमान की जांच पड़ताल करना, और प्रायश्चित्त पश्चाताप करना। साधना–पाप तो साधना में मन को लगने नहीं देते, और लगे हुए साधक साधना में सफल नहीं होते छिद्रों के कारण। निश्चित समय पर, निश्चित समय तक उपस्थिति न देना और शेष मन्त्र-योग प्रथम भाग में लिखे हैं (पांचवां अध्याय)

सब से प्रथम कठोरता के दूर करने का साधन करना चाहिए। जब तक साधक का हृदय पिघलता नहीं नरम कोमल और सरल आर्द्र नहीं बनता, तब तक आगे चल ही नहीं सकता। आंख कठोर है, तो किसी

से प्रेम की दृष्टि से नहीं देख सकेगा । कान कठोर है, तो दीन दुःखी की करुणामयी आवाज का प्रभाव न पड़ेगा । वाणी कठोर है, तो कोमल हृदयों को छेद देगा । मन कठोर है तो किसी को लताड़ते, मारते, रक्तपात करने तक उसे दर्द न आयेगा । बुद्धि कठोर है, तो अन्याय करने में उसे कोई पश्चाताप न होगा । इसलिए सबसे पहले वाणी की कठोरता का उपाय करना चाहिए, जो संसार व्यवहार करने वाली है । यह कठोरता है तो सब प्राकृतिक पदार्थों में । कई कठोर पदार्थ पानी में गल जाते हैं, कई कठोर रगड़ से और पीसे जा कर कोमल हो जाते हैं, कई कठोर प्रचंड अग्नि में गलाये जाते हैं । कई कठोर अग्नि के बल से मशीनों में पीसे जाते हैं, कोई हथोड़े से कूटे जाते हैं । ये जड़ पदार्थ बनस्पति, औषधि, (जमायत) और खनिज का कठोरपन, बनाया भी इन्हीं की तरह । कई उपदेश से नर्म किए जाते हैं, कई तप, घोर तपों से, कई घोर विपत्तियों के आने पर सरल नर्म हो जाते हैं । घोर विपत्तियां जो प्रभु की ओर से मिलती हैं, वे पीस देती हैं, अथवा पत्थर सोने के समान अग्नि में गला देती हैं । वेद भगवान ने कहा, वाक् पतिर्मा पुनातु—वह वाणी का

स्वामी मेरी वाणी को पवित्र कर दे।

२२-३-६५ सोमवार चैं० कृ० पंचमी २०२१ वि०

ताड़ना

प्रभु आश्रित ! यह ठीक जान ! माता के प्यार में मातृ हित तो प्रकट है ही मगर माता की मार में भी मातृ हित है, मगर निहित है। ऐसे गुरु सत्कार, जो शिष्य को मिलता है, उसमें चमत्कार प्रकट है, मगर गुरु की ताड़ में भी शिष्य गुरु का चमत्कार देखे। ताड़ से ही होशियार रहता है।

२६-३-६५ शुक्रवार चै० कृ० नवमी २०२१ वि०

अन्दर का स्वाध्याय

प्रभु आश्रित ! साधक अपने अन्दर का स्वाध्याय कैसे करे ? एक तो वह अवगुण हैं, जो लगभग उसके स्थाई हैं। उनका स्थाई इलाज मन्त्र योग चौथे भाग में है। दूसरा जैसे अब बैठा हुआ है, और मन से ईर्ष्या, डाह पैदा होने लगा। प्रथम तो यह सोचे मेरे अन्दर कौनसा तत्व इस समय अधिक हो गया फिर उसका इलाज। यह ईर्ष्या हृदय में जलन पैदा कर रही है। यह गुण दाह अग्नि का है। अब अग्नि को बुझाने वाला तत्व जल है, तो अगर साधक सचाई से अपने अवगुण

को मिटाना चाहता है, तो उसे पश्चाताप होगा, पश्चाताप से रुदन होगा और आंखों से जल अश्रुधारा चल पड़ेगी, तो शांत हो जावेगा। अगर उसके अन्दर कंजूसी की छाप आ गई है, और मन में कठोरता या रूखापन से पेश आ रहा है, तब उसे सोचे, यह कठोरता रूखापन कहां से आया है ? तो यह पृथिवी तत्व का गुण है। पृथिवी तत्व बढ़ गया है, इसे तर, सरल, पिंघलाना जल का काम है, तो जल के स्नेह तत्व को ज्ञान विचार से पैदा करे, कंजूसी उदारता में बदल जावेगी। अगर चंचलता मन में शेख चिल्ली के हवाई किले बांध रही है, तो विचारे कि यह गुण वायु का है। वायु तत्व अधिक हो गया है, तो प्राण को रोक प्रणव का जप तेजी से करने लग जाए, या प्रच्छन्नधन प्राणायाम या भस्त्रका प्राणायाम करने लग जाए।

यदि घृणा आगई है, तो आंख से देखा नहीं जाता, स्पर्श करना पसन्द नहीं करता उसकी बात कान से सुनना नहीं चाहता, जिह्वा से सीधी तरह बोलना नहीं चाहता, तो यह रूक्षता से है, और यह रूक्षता वायु का गुण है। इस वायु को तर बनाना स्निग्ध बनाना जल का काम है, विचार करे। जल से सब की

उत्पत्ति का घृणित बदबूदार रज, वीर्य से अपनी उत्पत्ति और गंद अपवित्रता से लिथड़ा हुआ आया। अमृत खा कर टट्टी पेशाब हो जाता है, और शूकरनी का टट्टी पेशाब खाना सब एक जैसे जीव हैं। इस ज्ञान विचार से नम्रता आयेगी। जब किसी के दोष को छिपाए हुए था, तब पृथिवी का गुण, आच्छादन था, उसे उघाड़ने को चेष्टा हुई, तो यह वायु का गुण आक्षेप पैदा हो गया, अब इसका इलाज वही वायु का गुण प्रभाव है, इस विचार को उसी प्राणायाम से बंद करे, अभाव कर दे अथवा आकाश में मन को ले जावे अभाव हो जावेगा। एक साधक के मन में किसी का अब अनिष्ट चिंतन होने लगा, समझो प्रध्वंस गुण अग्नि का है। उसे कैसे मिटाए, यकदम पृथिवी में गहरे कुएं के जल में मन ले जाए, अनिष्ट चिंतन डूब जावेगा।

२८-३-६५ रविवार चैत्र कृष्णा एकादशी सं० २०२१ वि०

प्रभु आश्रित ! जब तुम इस शरीर से न रहोगे, तो यदि कोई तुम्हारा वर्णन करे तो क्या कहेगा ? क्या तुम्हारे कद, बुत, रंग, रूप, शकल का वर्णन करेगा, कि प्रभु आश्रित ५॥ फुट का था, गंदमी रंग का था,

कोई कहे, प्रभु आश्रित का निचोड़ क्या है ? यही निचोड़ ही तुम हो। यह निचोड़ है, तुम्हारा जीवन तुम्हारे शरीर का जीवन तो है "प्राण" और तुम्हारी आत्मा का जीवन है "ज्ञान"। तुम्हारे जीवन का सार है, तुम्हारे शरीर आत्मा मिश्रित नाम प्रभु आश्रित का यश अपयश। यह ज्ञान संसार के लोगों को होगा। आंख से, कान से, जिह्वा से। जो वह कहेंगे वही तुम्हारे जीवन का सार है, निचोड़ है।

देखने वाले की आंख या तुम से प्रेम करेगी या घृणा, द्वेष। सुनने वाले के कान तुम्हारी निन्दा करेंगे, या स्तुति और जनता की जबान होगी—अच्छा हुआ कि मर गया, या कहेंगी आंसू बहाकर ऐसा व्यक्ति तो चिर काल सदा जीता रहता। सुनते ही या नाम लेते ही या सिर झुका देंगे, या लातों से पांव से ठुकरा देंगे। यही तुम हो, यही तुम्हारा जीवन है, यही सार है, यही प्रभु आश्रित है।

जन्म जन्मांतर की वासनाएं एकत्रित होकर जम गई हैं, जैसे मिट्टी का बड़ा भारी तोल का ढेला, जो किसी से उठाया नहीं जाता। यह तो सिर फोड़ेगा, अगर एकदम सिर पर आ पड़ा। यह नष्ट होने का

नहीं, इसे तो अकेले पुरुषार्थ करोगें, तो इसे हाथ पांव से तोड़ते जाओ। टुकड़े टुकड़े करते जाओ अब फिर उन्हीं छोटें छोटें टुकड़ों को एक दम जोर से ऐसा भूमि पर दे मारो कि वह टुकड़ा (अणु अणु) हो जावेगा। ऐसा क्षीण निर्बल कर दो, कि वह कभी सिर पर आक्रमण न कर सके। यही इस का नष्ट होना है, अर्थात् इसकी शक्ति को नष्ट करना है। वह यन्त्रों से नष्ट नहीं होगा। इसका नाम है जो जन्म-जन्मांतर लग जावेंगे, टुकड़े करते करते, इस और इसकी शक्ति को तनु सूक्ष्म क्षीण निर्बल करने का।

जिस तप का वर्णन २५-३-६२ में आया, और चाहते हो कि वह बड़ा वजनी ढ़ेला जो किसी से नहीं उठाया जाता एकदम चूर चूर हो जाएं, तो स्वाध्याय (ज्ञान) से पहले उस शक्ति को जानने का यत्न करो। जब जान जाओ इस शक्ति को, तो उसके अर्पण हो जाओ, उसकी शरण लो। वह सर्वशक्तिमान एकदम एक क्षण में उसे चूर चूर कर देगा, अथवा उस ढेले को तुम्हारी भक्ति ईश्वर प्रणिधान से भिगो देगा। वह नर्म हो जाएगा कि सुगमता से उसे तोड़ सकोगे। या वह प्रभु एकदम उसे अपने सागर में बहा कर लीन कर

देगा, कि नाम निशान ही न रहेगा। यही भक्ति के साथ परम वैराग्य, तुम्हारा हृदय अन्तरिक्ष की तरह विशाल हो जावे निर्मल स्वच्छ आकाशवत् तो समस्त वासनाओं को महान प्रकृति अपने पेट में ले जावेगी।

(२) तुम्हारे साथ कौन रहता है ?

प्रभु आश्रित ! तुम्हारे साथ कौन रहता है ? मैं अकेला रहता हूं। दरवाजे बंद रखते हो या खुले ? बंद रखता हूं। यही भूल समझने की बात है कि कोई भी प्राणी अकेला नहीं रहता, रह सकता। प्रत्येक जीव के साथ शरीर मन, बुद्धि, आदि, पृथिवी, आकाश, दिन या रात, वायु जहां भी रहे, बैठे चले या सोए, पृथिवी आदि जड़ देव तो उसके मन बुद्धि की चेष्टाओं में साक्षी रहते हैं, और उनका नियामक परमात्मा फलकर्म देने के लिए हर क्षण रहता है। जरा गहराई से उस बात को समझो ! तुम्हारे संस्कार और स्मृति तुम्हारे अनादि काल के साथी हैं।

(३) चंचल मन की साधना

प्रभु आश्रित ! चंचल मन की साधना कैसे करोगे ? आदर्श सामने रखकर। पशुओं पक्षियों का मन मनुष्यों की तरह चंचल है, वह तो आदर्श बन नहीं सकते।

फिर सृष्टि है देवताओं को। आकाश और पृथिवो पहले से स्थिर हैं, अग्नि भी अत्यन्त तेज एक तार रखती है। केवल वायु और जल हैं, जो सदा बहते चलते दिखाई देते हैं। वायु को बांधना तो जीवन की हानि है केवल जल है जिसके बहाव का रुख बदलता है। उसे बिल्कुल बांधा नहीं जा सकता, नहीं तो वह भी उभर कर किनारे फाड़ देगा। हां सांसारिक विषयों से बांध परमार्थ की ओर बहाव कर देता है मन का। मन को कहा भी नदी के समान है, मान सरोवर। इस लिये जल को आदर्श बनाना चाहिए।

३०—३—६५ चैत्र कृ० त्रयोदशी

दिव्य जीवन की साधना

प्रभु आश्रित! इसमें संदेह नहीं कि मानव जीवन को दिव्य जीवन बनाना है। देव जीवन बनाने की साधना है तो बड़ी कठिन, पर है जरूरी! मनुष्य जन्म भाग्य से मिला है, इसलिए कुछ करके मरना चाहिए। साधना कितनी ही कठिन क्यों न हो व्रती बन कर करे अभ्यास निरंतर श्रद्धा के साथ करे, तो सरल सुगम हो जाती है, इसलिए व्रत करना चाहिए। पहले तो यह दिमाग़ में बिठा ले, कि यह तुम्हारा शरीर नरतन है,

या पशु का शरीर है। जब यह समझ लो कि पशु का नहीं है, तो नरतन है।

फिर दूसरी बात यह सोच, कि यह तन मल मूत्र हड्डी मांस का पिंजर है, या भगवान विष्णु का मन्दिर है? यह तन शरीर किराया की गाड़ी है, या यह शरीर इस जीवात्मा की पूंजी धन व्यवहार व्यापार करने की है? हठ योगियों ने मल-मूत्र का पिंजर कहा और वैरागियों ने किराया की गाड़ी। परन्तु वेद भगवान तो बहुत उत्तम नाम देता है। यजुर्वेद अध्याय ४ मंत्र ११ में इस नर तन को आठ उपाधियां देता है। उस में से जैसा किसी के दिमाग में बैठ जाये, उसी के अनुसार वह साधना करे और निरंतर लक्ष्य की ओर अग्रसर करने वाली स्थिर मति से धारणावान बने।

२ चिंता छोड़ श्रद्धा के साथ विश्वास को जोड़

प्रभु आश्रित! गुरुवर का पत्र नहीं आता, आदेश के लिए क्यों उदास व्याकुल होते हो?

तुम संकल्प न तोड़ो, स्थान न छोड़ो, गुरु सान्निध्य तो तुम्हारा है ही। गुरु ज्ञान भण्डार, आत्म मार्ग का पुस्तकों में भर दिया, वह तुम्हारे पास है, उनका बार बार आवश्यकता अनुसार स्वाध्याय ही गुरु सान्निध्य

और संग है। तुम यह कभी कभी धारणा बनाते हो, कि कोई माता भी माता तेजकौर सी बना लूं, जिसे नमस्कार करूं। भोले ! तुम अपनी माता, नानी, जो तुम्हारी जननी भी हैं, और गुरु भी मानते हो, उनको तो मानसिक नमस्कार प्रतिदिन करते रहो। फिर बनाई हुई माता, बहन, पुत्री में वह रहस्य नहीं पा सकते, असल असल है, नकल नकल है। तुम हृदय विशाल और गुण ग्रहण करने के लिए परमेश्वर की बनाई पृथिवी माता को माता और द्यौ में आप जल को पिता मानो, और प्रभु के रचे संसार उपव्याख्यान वेदों को अपने सन्मुख गुरु मानों, जो सदा तुम्हारे चौबीस घंटे साथ छत्रछाया बने रहें। शरीर धारी माता पिता गुरु तो सदा चौबीस घण्टे साथ नहीं रह सकते। रही बात ज़बान से समझाने की। वह तो तुम्हारी योग्यता ही समझ सकेगी, उनकी ज़बान तुम्हें नहीं समझावेगी। प्रभु, जिसके तुम आश्रित हो, ज्यों ज्यों वह तुम्हारा समय देखेगा, पर्दा उठाता जायेगा। पर्दा उठाता है तो शीघ्र समझ आ जाती है। यह पर्दा उठाना, योग्यता का उत्पन्न करना और धारण करने की और आचरण करने की सामर्थ्य तो प्रभुदेव ही दिया करते हैं, किसी मनुष्य

को चतुराई का काम नहीं। कर्म अनुसार पुरुषार्थ भी अपने समय पर फल देता है। चिंता छोड़ और श्रद्धा के साथ विश्वास को जोड़।

३१–३–६५ चैत्र कृ० चतुर्दशी सं० २०२१ वि०

दोषों के दूर करने के गुर

प्रभु आश्रित ! समय थोड़ा और काम बहुत करना है। यदि तो साधक लोग वही आते हैं, जिन्हें बुलवाया गया था, तो उन थोड़ों को सारा दिन क्रिया और व्रत अभ्यास में लगाए रखते, वही ही साधना के योग्य बनते मगर अब बहुत से जाग कर सोते हुए पहले से सोए हुए जगारा करने (साधना) के लिए आ गए। उन सब की पृथक्-पृथक् श्रेणी बना कर उन्हें एक-एक साधन पर लगाया जावे, तो सात दिन में एक साधना में कुछ अपना बना सकेंगे। जिन के मन अति चंचल हैं, उनको तो भ्रामरी प्राणायाम की गुञ्जार में रस आयेगा और मन स्थिर होगा। जिन के मुख मंडल में आकर्षण नहीं उन्हें हंस मुख क्रिया में लगाया जावे। जिन्हें परदोष देखने का दोष है, उनको अंगूठा में अपनी शकल के देखने के अभ्यास में लगाया जावे, और थकनें पर डंडा जाप करें। जिन्हें रस आस्वादन में आसक्ति है

पेटू हैं, गंध वस्तु की आई, कि उनका मन खाने को हो गया, उनको जिह्वा में दांत का अभ्यास कराया जावे ! जिन्हें कठोरता वाणी की है, उन्हें भी और क्रोध वालों को, जो अपने से सदा बाहर हो जाते हैं, तालु जिह्वा का अभ्यास परिपक्व कराया जावे । काम वासना जिसकी प्रबल रहती है, और उन्हें अशांति रहती है, उनको प्रच्छर्दन प्राणायाम सिद्धासन के अभ्यास से कराया जावे । ईर्ष्या घृणा वालों को मन्त्र योग के विधि-विचार के अतिरिक्त वर्णात्मिक उपासना का गुर बताया जावे ।

१-४-६५ वीरवार चै० कृ० पक्ष सं० २०२१ वि०

आत्म साधना

प्रभु आश्रित ! साधकों को साधना में एक तो मन को बांधने और दूसरा पवित्रता के लिए साधना करनी है । यदि लक्ष्य आत्मा को स्वतन्त्र करने का हो, तो चार साधन हैं—नीरोगता, स्थिरता, पवित्रता, स्वतन्त्रता ।

शरीर की नीरोगता—अब शरीर में पूर्व कर्मों से भी रोग आता है । पैतृक संस्कारों से रोग रहता है, और इन्द्रियों के असंयमी रहने से भी शरीर पर प्रभाव पड़ता है । पहले दो रोग तो किसी के बसके नहीं । जो

साधक के अपने बस में हैं, वह इन्द्रिय संयम प्रत्याहार से शरीर सुखी रहेगा। मन की स्थिरता का साधन है, धारणा, और बुद्धि की पवित्रता का साधन है ध्यान, और आत्मा की स्वतन्त्रता का साधन है समाधि जन्य प्रज्ञा विवेक ज्ञान। प्राणायाम शरीर को भी लाभ देता है और प्रत्याहार का सहायक बनता है। प्राणा-याम पर तप: कहा गया है। तप में दो काम करने होते हैं। श्रम और संयम। श्रम तो शरीर के लिए और संयम इन्द्रियों के लिए होता है।

आत्म साधना के लिए धारणा ही परम साधन है। धारणावान् व्यक्ति कठिन से कठिन साधना को सिद्ध कर दिखाते हैं। वह धारणा कैसी होती है? निरंतर लक्ष्य की ओर अग्रसर करने वाली निश्चयात्मिक स्थिर मति का नाम धारणा है। कोई सुगम वस्तु नहीं। साधारण जनों के लिए तो धारणा पर काबू पाना, और काबू पा कर धारणावान बने रहना, कोई सामान्य कार्य नहीं। हां! जहां ऐसा वातावरण, जिस समाज व संस्था का वातावरण ऐसा हो, वहां व्यक्ति सुगमता से सफल हो सकता है। वह वातावरण कैसे होता है? समाज या संस्था वाले व्यक्ति का मन उज्वल

समाहित मन, कर्म कुशल, देव, याजक, मन होता है, वह रक्षा करते हैं। यजुर्वेद में अध्याय ४ मंत्र ११ में ऐसे व्रत करने वाले व्यक्ति के लिए कहा !

ओ३म् यं देवा मनो जाता मनो युनो देव कृत वस्तं नोऽवन्तुतं नः पांतु तेभ्यः स्वाहाः ॥

नोट :—प्रभु कृपा से अदर्शन मौन व्रत समाप्त हुआ।

४–४–६५ रविवार नवरात्रा चैत्र शुक्ला तृतीया संवत २०२२ से नवरात्रा का शिविर मंत्र योग साधना का आरंभ हुआ। १०–४–६५ राम नवमी पर शिविर समाप्त हुआ। इस अवधि में कई विचार लिखने योग्य आए, मगर समय के अभाव से लिखे न जा सके, और भूल से गये। ला० कृपाराम सहगल पोस्टल क्लर्क रिटायर्ड सोनीपत निवासी ने संस्कार कराकर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर दीक्षा ली, नाम कपिल देव रखा गया।

९–५–६५ रविवार बैसाख शुक्ला अष्टमी सं० २०२२

बदल दिया मन का कांटा ! प्रभु सद्गुरु देव ने।

राष्ट्र देह यज्ञ किया समर्पण मन आत्म भाव से अमृत रसपान कर चलो उत्तरा खंड में, इस पार गंगा हार मान कर पार गंगा चल दी।

माता को लोरी में सरस्वती नाव में चढ़ा दिया, नाखुदा है सहायक पार करने को वह।

१३-५-६५ वीरवार बैसाख शुक्ला २७ सं. २०२२ वि०

प्रातः यकदम बुद्धि में ऐसी प्रेरणा हुई कि उत्तर काशी चलो। श्री महाराज योगीराज जी तीन दिन से दर्शन नहीं दे रहे, और भजन नीरस बनता है। महाराज की प्रसन्नतार्थ चलना चाहिए महाराज जी नाराज मालूम होते हैं।

तय्यारी केवल कम्बल, कमण्डल ले कर जाने की की, मगर इन्द्रसैन जी ने कहा, मैं जरूर साथ पहुंचाने चलूंगा। तब शांति देवी ने सामान आदि बांधना आरम्भ किया। श्री महाराज की सेवा में दस्ती-पत्र माता रामप्यारी जी एम० ए० पी० एच० डी० निर्देशक शिक्षा विभाग राजस्थान के द्वारा भेजा। सायं को श्री दीनानाथ अरोड़ा ने अपनी मोटर कार से ऋषिकेश नेपाली आश्रम में पहुंचा दिया।

१४–५–६५ मंगलवार २८ बैसाख शु० दशमी

उत्तर काशी की बस से ५।।-६ बजे चढ़ा और ८ बजे सायं उत्तर काशी पहुंचे। अड्डा पर श्री धर्म देव जी वानप्रस्थी व एक नौकर श्री महाराज जी ने भेजा

हुआ था। सामान कुलियों से योग निकेतन में भिजवाया। मुझे शौच का विचार था, मैं अड्डा के पास टट्टियों में चला गया। इन्द्रसैन पानी कमण्डल में लाये, मैं शौच से निवृत हो कर धोया और नलका से हाथ मांजने कुल्ला करने के लिए पानी मंगवाया। नलका में पानी न था। मैं धर्म देव जी वान प्रस्थी के साथ चल दिया कि आगे धो लूंगा। इन्द्रसैन भी पीछे पीछे थोड़ा सामान उठाये आ रहे थे। मार्ग में सब नलके बन्द पाए। आश्रम पर पहुंच गए। धर्म देव जी तो अंदर प्रवेश कर गए, इन्द्रसैन जी अभी पीछे रह पाए। मैंने सोचा गंगा नदी से हाथ मुख धो, शुद्ध हो कर श्री महाराज के दर्शनों और नमस्कार करने जाऊं। नीचे घाट की पौड़ियों से उतरने लगा, गंगा से जल ले शुद्ध हुआ, ऊपर को चढ़ा, सीढ़ियां चढ़ी कि पता नहीं लगा. पग फिसला या चक्कर आ गया गिर पड़ा, और लुढ़कता हुआ नीचे नदी की ओर जा रहा हूं। आगे बड़े-बड़े पत्थर पड़े थे, उन्होंने रोक लिया। नदी में पड़ने से बचा तथा ऐसा गिरा, सख्त चोट आई। मेरे मुख से निकला धन्य हो, धन्य हो! उठा आदमी पास कोई नहीं था। यकदम हड्डी की चोट से सब सूज गया।

दर्द करने लगा। मगर प्रभु देव ने अपने बल से उठा खड़ा कर दिया, तब धीरे-धीरे चढ़ ऊपर पहुँचा।

महाराज के योग निकेतन में प्रवेश किया। प्रतीक्षा में माता राम प्यारी डायरेक्टर, शान्ती देवी जी और धर्मदेव जी आदि माता धर्मवती जी खड़ी थीं। ऊपर से श्री महाराज योगिराज गुरुवर उतर आए। मैंने साष्टांग दंडवत् किया। अब किसी ओर से उठने की शक्ति न रही। दाएं से चोट से सूजा हुआ दर्द करता, और बाएं को विना दायें हाथ टेके उठा न सकता। महाराज ने ऐसा देख, फरमाया, क्या हो गया ? मैंने महाराज जी से कहा चोट आई है। श्री महाराज जी ने उठाया, अंदर कमरे में ले गए। माता धर्म देवी के द्वारा डाक्टर को अस्पताल से बुलवाया, वह आये, देख कर कहा, हड्डी टूट गई है, माता राम प्यारी ने पूछा Displaced खिसकी या क्या फरमाया Fractured (टूटी) है। डाक्टर साहिब ने कहा, अभी अस्पताल दाखिल करो।

महाराज जी ने फरमाया हम यहां ही इलाज करेंगे। अस्पताल न ले गए। डाक्टर साहिब को महाराज के संकेत से धर्म देवी माता ने दस का नोट पेश किया। डाक्टर साहिब ने न लिया कि आप साधु हैं।

कुछ देर बाद हम अस्पताल चले गए। वहां कम्पौंडर पट्टी आदि सामान तैयार कर रहा था। कम्पौंडर ने सामान तैयार करके टेलीफोन किया और बाद में कहा, डाक्टर साहिब तो नहीं आ रहे, आज्ञा दी है, पट्टी बांध दो। हम सब हैरान हो गए। महाराज को अच्छा न जचा। माता धर्म देवी को भेजा, उनके घर वह गई। दस रुपया उनको भेंट किया, कि आप स्वयं पट्टी बांधें। तब डाक्टर साहिब ने कहा, मैं चाय पी के आता हूं। आप पट्टी बांधी, और कहा तीसरे दिन बंधवाया करें। पलस्तर लगाने का स्थान नहीं, पट्टी ही जोड़ेगी, वापस चले आए।

महाराज जी ने फरमाया, तुम बिना आज्ञा लिए आए, इस लिए दंड मिल गया। हमारे देने से पहले। बात-चीत में फरमाया, हम तो नाराज न थे, पत्रों का उत्तर नहीं दिया, जरूरत न समझी। तुम ने व्रत न छोड़ना था। मैंने कहा मैं तो गुरु प्रसन्नता के लिए जैसा महाराज ने लिखा था। गुरु सानिध्य से यह सब काम हो सकते हैं। मैंने कहा, इससे मेरा व्रत नहीं, टूटता, महाराज के दर्शन करने के लिए आया हूँ, अच्छा हुआ दंड मिल गया। इस दंड का मुझे कोई

विचार नहीं, मैं सन्तुष्ट हूं। महाराज की नाराजगी मैं सहन नहीं कर सकता था, हानि समझता था। मार्ग रुकने का भय था।

महाराज को मालूम हुआ कि डाक्टर साहब लालची हैं, हमारे परिचित नहीं। उन्होंने उसके एक मित्र मदन लाल दुकानदार को पत्र लिखा। स्वामी भूमानन्द मदन लाल की दुकान पर गए, उसने बड़ा सत्कार किया। उसे कहा, डाक्टर साहिब के पास गया, योगीराज महाराज की महानता का परिचय दिया। तब दूसरे दिन अस्पताल गए। महाराज के फरमाने पर एक्सरे लिया पट्टी कम्पौण्डर से बंधवाई, बड़े मान से बोलता, और बर्ताव किया। महाराज के पूछने पर कहा कि आपकी तसल्ली के लिए एक्सरे किया है, नहीं तो हम तो कल कह चुके थे, हड्डी टूटी है। मैंने कहा, इस हड्डी का क्या नाम है? तो कहा, कातराय कारमरा। कहा, तीन मास बांधनी पड़ेगी ५ सप्ताह में आराम आयेगा।

महाराज जी ने फरमाया, चोट की सूचना कहीं भी मत दो, हम भी किसी को नहीं लिखते। लिखेंगे तो लोग आना आरम्भ कर देंगे। केवल अपने पहुँच की

चिट्ठी इन्द्रसैन जी ने देहरादून लिख दी १८-५-६५ को डाक्टर साहब ने श्री महाराज से कहा, एक सप्ताह और रोक लेवें। हम तीसरे दिन जाते रहे। दो तीन रात सोने में पासा न बदल सकने और एक चित्त पड़े रहने से नींद न आती, फिर धीरे-२ नींद आने लगी। टट्टी पेशाब इन्द्रसैनजी कराते। कच्छे का नाला खोलते, बांधते, साथ खड़े रहते, कुल्हे पकड़ कर उठाते, निष्कर्ष हर समय साथ दिन-रात बंधे रहते, बड़ी सेवा की। इन्द्रसैन जी निद्रा और थकान से स्वयं रोगी हो गए, जैसे हुआ करते हैं। अब वापस चलने की तैयारी की। महाराज से कहा—फरमाया, किसी और को मंगवा लो। प्रभु ने दया की, दो घन्टे नींद करने पर इन्द्रसैन जी तकड़े हो गए, और रह गए। हम ने कहा, अब हम हरिद्वार जल्दी जाना चाहते हैं। डा० ऋषिकेश ने आना है, उसके सुपुत्र डा० रवि ने भी। वहां दिखा कर इलाज कराऊंगा। फरमाया, अच्छा तार दे दो मगर रोग का तार में कोई जिक्र न करना।

२३-५-६५ रविवार

महा पुरुषों का आदेश

प्रातः काल भजन में था। महा पुरुषों के दर्शन

हुए, साथ गुरु नानक देव जी और पूज्य योगी राज जी उपस्थित। उनकी उपस्थिति में संकेत किया। प्रभु-आश्रित ! तुम्हारी उत्तरा खण्ड की यात्रा गुरु धाम उत्तर कांशी पर समाप्त हो गई और अब वापस सुन्दर पुर कुटिया चले जाओ। उत्तरा खण्ड में रह कर जो पाया है, उसे पीयो और पिलाओ। फकीर की रहनी बहनी बनाओ। साधु की कहनी सहनी हो ! ब्राह्मणों की तरह गाओ, फकीरों की तरह रहो, साधु की तरह रहो, ऋषि विचार हों। भक्ति योग फैलाओ, भिक्षा का अन्न खाओ, कुटिया को विरक्त रखो।

श्री महाराज के चरणों में नमस्कार करने गया। मैंने पूछा, महाराज कभी मेरा ध्यान आया ? कैसा ध्यान ? मेरे भविष्य का ? ध्यान तो तब किया जावे, जो दूर हो। अब सामने हो, तो पूछो, हम सब ऐसे ही बतला सकते हैं। यह गुमान था, कि अब महापुरुषों ने महाराज और गुरु नानक देव की उपस्थिति में संकेत किया, शायद महाराज जी को प्रेरणा की हो महाराज ने कुछ न बतलाया, मैंने भी साहस न किया।

२५–५–६५ मंगलवार फिर आज प्रातः भजन में वही २३ के शब्द महा पुरुषों ने दोहराए। इन्द्रसैन जी

को लिखवा दिए। अब प्रातः ही महाराज के चरणों में गए, और महाराज जी ने फरमाया। पूछा, अब क्या विचार है ? जाने का—कहां ? मैंने निवेदन किया, कि मुझे तो महा पुरुषों का आदेश उपरोक्त हुआ है। महाराज सहम गए। फरमाया कौन महापुरुष ? मैंने निवेदन किया, वही मेरे महापुरुष तपोवन वाले। जिन्होंने मुझे महाराज के अर्पण किया था। फिर चुप हो गए। फरमाया-अच्छा तैयारी करो, और डाक्टर ऋषिकेश को तार दे दो, जिस से वह हरिद्वार न आ-जाए। मैंने कहा, लाला लोक नाथ को तार दे देता हूं, वह रोहतक फोन कर देंगे, फरमाया नहीं, नहीं, डाक्टर जी को सीधी तार दे दो, वह कुटिया की सफाई करा रखेगा।

अस्पताल में जा कर आखिरी की पट्टी बंधवाई। डाक्टर साहब से आज्ञा ली, कि हम कल जा रहे हैं। डाक्टर साहब ने कहा, अभी एक सप्ताह और पट्टी रखनी है, ठैहर जाते तो अच्छा था। हम ने कहा, लिख चुके हैं।

रात्रि को श्री महाराज के चरणों में गए। जो खाद्य वस्तु भोजन, आटा और गाए के घी का बड़ा डब्बा

महाराज के चरणों में भेंट कर दिया। दो सौ मेरे पास व्यय के लिए थे, वे भी भेंट कर दिए। फरमाया, नकद तो हम संन्यासियों से कभी नहीं लेते, फल-फूल या और चीज तो तुम्हें प्रसन्न करने के लिए ले लेते हैं। मैंने कहा मैं तो शिष्य हूं, संन्यासी तो नहीं, फरमाया, नहीं, हो तो संन्यासी न ! मैंने कहा महाराज मैंने रहना तो अब भिक्षा पर है, अब अपने पास क्या रखना है। फरमाया, तुम और काम लगा देना, हम नहीं लेते। बहुत देर तक बैठे रहे। कोई और विपरीत बात नहीं की।

२६–५–६५, श्री महाराज ने भोजन बनवा दिया, साथ चले अड्डा पर बस पर चढ़ाया, सब सामान लदवाया। मैंने कहा, अब महाराज जी सैर पर जावे। हम बैठ गए। फरमाया नहीं, तुम को रवाना करके जावेंगे। आशीर्वादें दीं।

इन्द्र सैन जी मैं बस पर प्रातः छ बजे चढ़े। ८ बजे ऋषिकेश पहुंच गए। वहां डाक्टर कुमार कार लेकर आए हुए थे। शांति देवी जी, स्वामी प्रेम भिक्षु (प्रोफेसर कृष्ण कुमार एम० ए०) बाबू दयानन्द जी देहरादून से सब आए थे। इन्द्रसैन को ज्वाला पुर

सूचना के लिए भेज दिया कि वहां सूचना दी हुई थी कि २६ को हम सायं तक पहुंच जावेंगे और हम देहरादून चले गए।

रात को डाक्टर ऋषिकेश जी ला० लोकनाथ जी को फोन से सूचना दी। ला० लोक नाथ को मिल गई। उसने कहा मैं कार लेकर आता हूं, उसे रोक दिया गया। डाक्टर कुमार ने अस्पताल के विशेषज्ञ को बुलवाया, उन्होंने देखा कि फ्रैक्चर हड्डी टूटी हुई है। कल पट्टी बांधेंगे, एक्सरे करेंगे।

२७–५–६५ ला० गणेशदास जी का दिल्ली से फोन आया। मैं कार भेज रहा हूं, मेरी साम वेद की पूर्णाहुति रविवार को है, स्वीकृति दीजिए रविवार के स्थान शनिवार की स्वीकृति दी। अस्पताल में डाक्टर साहिब ने एक्सरे किया, कहा, हड्डी जुड़ गई है, एक तिहाई शेष है, मैं चकित हूं कि इस उमर में कैसे जल्दी जुड़ गई। महाराज जी ने कहा–यह मेरे प्रभु देवजी की कृपा है। पट्टी बांध दी। रात को दर्शन कुमार अपनी धर्म पत्नी सरोज, अपनी बहन राजकुमारी सहित कार ले कर आ गया। मैं सोया हुआ था। १०-११ बजे रात के आए।

२८–५–६५ को तपोवन गए, सब सज्जनों

के दर्शन किए, वार्तालाप योग सम्बन्धी होती रही। ४ बजे सायं को प्रस्थान किया, इन्द्रसैन जी का स्वास्थ्य ज्वालापुर से थकावट होने के कारण ठीक न था, शांती देवी मुझे पहुँचाने साथ चली। रात को ६।। बजे के लगभग दिल्ली पहुंच गए। मार्ग में मुज्जफर नगर वालों के दर्शन हुए।

२९–५–६५ प्रातः ला० गणेश दास जी के घर यहां पूर्णाहुति पर उपदेश दिया गया, और सायं को मोटर कार से डाक्टर साहब रोहतक पहुंचाने आए (ला० लोक नाथ जी साथ थे) आश्रम में ठहरे। कुटिया की अभी मुरम्मत हो रही थी।

३०-५-६५ रविवार अमावस थी, आश्रम में उपदेश और यज्ञ हुआ, १-२-३ जून को आश्रम में प्रातः सायं कथा में उपदेश होते रहे।

३-६-६५ शाम को मेरे साथ शांति देवी, शुभकरी, पं० श्री राम, मंगल देव जी, अमर देव जी कुटिया पर आगए। मंगलदेव जी, अमरदेव जी यहां तीन दिन पहले से ला० हरद्वारी लाल जी की कुटिया पर ठहर गये थे। अपनी कुटिया की मुरम्मत करा रहे थे, पं० श्री राम माता शुभकरी शांति देंवी जी गुरुकुल में ठहरे।

४-६-६५ को माता शुभकरी जी पं० जी, मंगल

देव जी ने अपने साम वेद का यज्ञ मेरी कुटिया के कुण्ड में आरम्भ कर दिया।

१४-६-६५ सोमवार—पूर्णमाशी का आश्रम में सत्संग किया। सायं ६ बजे ला० ईश्वर चंद आर्य गुड़ मण्डी दिल्ली के साथ कार में दिल्ली गया। माता शुभ करीजी साथ चली, हरिद्वार ज्वाला पुर वापस जाने के लिए, प्रिय लाजपतराय भी लेने आया था। डाक्टर प्रेम नाथ जी ददानसाज़ के पास सायं के ७-३० बजे पहुंचे। उसने फिर माप लेनी आरम्भ की मैंने कहा क्षमा कीजिए। दांत बनवाने को नहीं आये, अतः कष्ट न कीजिए, मगर बहुत विवश किया, प्रिंसिपल विशन सहाय लाला लोक नाथ जी साथ रहे। दो दिन की शर्त डाली जरूर बना देने की।

१६-६-६५ प्रातः यज्ञ भवन उपदेश किया गया, उनका अखंड पाठ पारायण सामवेद आरम्भ कर दिया गया। उसके पश्चात् ईश्वर चंद जी अपने घर ले गए, वहां यज्ञ हो रहा था, उपदेश किया गया। उसके पश्चात् आदर्श नगर, इन्द्रा नगर, भक्त देवदत जी रोगी प्रेमी को देखने गया और ५ बजे सायं अखंड पाठ की समाप्ति यज्ञ कराकर कीर्ति नगर समाज मन्दिर में पहुंचा।

उपदेश हुआ, सायं पौने सात बजें डाक्टर प्रेम नाथ जी के गया, दांत चढ़ाए फिट तो आए मगर दोनों ओर चुभते रहे। खाते समय छाले हो गए।

१९-६-६५ श्री दत जी की कार से ला० लोक नाथ सहित प्रातः दिल्ली से प्रस्थान किया। रोहतक आश्रम पर पहुंच कर, फिर डाक्टर बिशम्भर नाथ जी ददांन साज़ को नए दांत दिखाए छिलवा कर लगवाए मगर कठिनता से लगे। कुटिया सुन्दर पुर पर पहुंचा। वे वापस चले गए।

१९-६-६५ से नरसिंह दास की प्रेरणा से साधना आरम्भ की गई ४।। बजे से ५।। बजे तक।

२१-६-६५ सोम० आषाढ़ कृ० सप्तमी सं० २०२२ वि०

भिक्षा का रूप

प्रभु आश्रित ! तुम प्रति दिन प्रार्थना करते हो, अपनी भिक्षा का रूप पूछते हो। तुम्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से भोजन भिक्षा मिलने पर सन्तोष नहीं हो रहा। तुम्हें जो आदेश पहले मिला था, भिक्षा का अन्न खाओ, जिसके लिए तुमने गौ घृत की धारणा भी तोड़ दी कि श्रद्धा से खिलाने देने वालों को यह पाबंदी न रहे।

तुम्हें जो आदेश दिया गया है, वह एक कठिन

साधना थी, न कि सुगम। लक्ष्य या साध्य जितना ऊंचा व महान् होता है, उसके लिए तप और साधना भी महान् करनी पड़ती है। तुम्हारी भिक्षा प्रतिग्रह से स्वतन्त्रता से खाने की नहीं है। आहार अन्न ही लो। मन का विशेष साधन है। साधक या साधु अन्न आहार सम्बन्धी कई प्रकार की धारणायें धार लेते हैं, अपनी अनुकूलता या लोक सुगमता, या अन्त में ईश्वरीय प्रेरणा से। वह इस पर स्थिर रहते हैं, यही उनका तप होता है। कोई समय की कैद लगा लेता है, कि एक समय खाऊंगा, पीछे नहीं। कोई इतने बार सोऊंगा अधिक नहीं, कोई एक वस्तु खाऊंगा, अन्य कोई नहीं। कोई इतने घरों से मांगूगा, अधिक नहीं। कोई इतनी रोटी लूंगा अधिक नहीं, कोई चौराहे या किसी स्थान पर समय पर जा पहुंचता है, जो दे जाता है. आवश्यकतानुसार ले लेता है, और स्थान पर नहीं जाता। निष्कर्ष ऐसी बहुत प्रकार की धारणा के तप करते हैं। वह सब उनके लिए ठीक होवेंगी।

तुम्हारे लिए यह धारणा होगी—तुम जब तक स्थाई रूप से इस स्थान पर रहो, उन श्रद्धालु प्रेमियों से अन्न खाओ, जिनका अपना अन्न है, अपनी भूमि

का है । सब्जी फल उनका खाओ, जिनकी अपनी उपज है । दही लस्सी आदि उनका लो जिनके घर अपना पशु है । स्थान से बाहर जाने पर जहां ये शर्तें पूरी नहीं होंगी वहां उस घर का लो जिसकी कमाई पवित्र चोरी रहित हो । इससे तुम सर्वभक्षी न रहोगे, प्रतिग्रह से बच जाओगे । तुम्हारी यह बाड़ तुम्हें लाभकारी रहेगी । स्वास्थ्य के लिए भी और मन की साधना के लिए भी ।

(२) आर्य संन्यासी

प्रभु आश्रित ! ज़बान को छुरी न बनाना, और न छड़ी बनाना । छुरी बुरी है, छड़ी कड़ी है । आर्य संन्यासी जो कानफ्रैंस (अधिवेषण) करने वाले हैं, क्या योजनाएं बना कर समाज का सुधार करेंगे ?

संन्यासी जब तक अपनी रहनी बहनी में फकीर न हो, और मन वाणी से साधु न हो, तब तक ऋषियों के विचार मस्तिष्क में नहीं ला सकता । तन फकीर हो, मन हृदय साधु हो, मस्तिष्क ऋषि हो, ऐसे संन्यासी बिगड़े हुओं का सुधार कर सकते हैं । जो संन्यासी विद्वान् हो कर एक दूसरे की निंदा करते हैं, वे सुधार कहां करेंगे, किसका ? ईर्ष्या, अपने मान की

प्रतिष्ठा का मोह, उन्नति, वृद्धि तथा शुद्धि संगठन का शत्रु है—एक दूसरे का आदर–यश संगटन का मित्र होता है। दृष्टांत यह कि एक साधु महात्मा अकेले विचरते घूमते थे। मार्ग में कोई दूसरा साधु मिल गया इकट्ठे यात्रा करने लगे, इकट्ठे रहने लगे। एक बार भ्रमण यात्रा करते-करते किसी नगरके बाहर ही थे कि वहां का एक धनी-मानी श्रद्धालु संत सेवी खड़ा था। साधुओं को देखकर चरण स्पर्श किए, और श्रद्धा आदर से अपने घर पर ले आया। सत्कार पूर्वक आसन पर बिठाया, और स्नान गृह में तेल साबुन कपड़ा रख कर कहा—भगवन्! आप एक-एक करके स्नान कर लीजिए फिर भोजन का समय हो जावेगा। साधु उठा, कपड़े उतार कर अन्दर स्नान गृह में चला गया। साहुकार ने दूसरे बैठे संत से कहा, यह साधु महाराज, जो स्नान करने गए हैं, बहुत बड़े सौम्य स्वभाव, सौम्य मूर्ति हैं। साधु ने कहा, वाह! वाह! यह साधु तो मेरे गले पड़ गया है, हठी है, गधा है, कोई बात मानता ही नहीं।

साहुकार चुप हो गया। साधु स्नान करके बाहर आ गया। अब दूसरे साधु की बारी थी वह स्नानघर

में चला गया। अब साहुकार ने उस स्नान कर चुके साधु से कहा—भगवन् यह साधु आप के साथी तो बड़े बुद्धिमान, विद्वान् मालूम होते हैं। तो साधु बोला—खाक बुद्धिमान हैं। यह तो मूर्ख पूरे दांद (बैल) हैं मुझे तो जान छुड़ानी पड़ जाती है। दोनों ने अपनी मान बड़ाई जतलाने के लिए दूसरे को नीचा बतलाया कि कहीं साहुकार किसी पर लट्टू न हो जावे। जब दोपहर हुई, भोजन का समय आया, साहुकार साधुओं को घर ले जाने के स्थान पर एक खली भूसा का बना कर ऊपर से कपड़े से ढांक कर, दूसरे में हरा घास रख ढांक कर सम्बन्धित साधुओं के आगे भेंट कर दी। साधु बड़े प्रसन्न हुए कि सेठ फलों के टोकरे हमारे लिए ले आया है, नाना प्रकार के फल होंगे। जब पर्दा उठाया, तो दोनों आश्चर्य में आ लाल-पीले हो गए। कहा, सेठ ! तुम तो बड़े श्रद्धालु भक्त थे, क्या हम को पशु समझा ? हम साधु न सही, मानव भी हमें नहीं समझा। साहुकार हाथ जोड़ कर कहने लगा, भगवन् ! जो आप ने अपने मुखारविन्द से कहा, वैसा आचरण किया है। दोनों लज्जित हो गए। यह अवस्था है साधु समाज की, फिर कैसे सुधार करेगी, बिगड़े हुओं का।

२६-६-६५ शनिवार आषाढ़ कृ० द्वादशी सं. २०२२ वि०

प्रभु आश्रित ! जब मनुष्य में कोई पाप वासना-पाप वृत्ति उत्तेजित होती है, तब रक्त में जोश या गति ऐसी पैदा होती है, जिस से उस प्रकार का पाप होता है।

यदि पाप वृति शरीर सम्बन्धी होती है, तो शरीर की शक्ति का ह्रास होता है, यदि वाणी की पाप वृत्ति से सम्बन्ध होता है, तो वाणी की शक्ति का ह्रास होता है। और यदि मानसिक पाप वृत्ति होती है, तो मन की शक्ति का ह्रास होता है। हर अवस्था में सूक्ष्म शरीर में शक्ति ह्रास का प्रभाव पड़ता है। साधक को इन शक्तियों के ह्रास का भान करना चाहिए, जिस से उसे विश्वास हो जावे, कि अवश्य शक्ति घटती है, जब भी पापवृत्ति हो।

(२) विद्या से विनय

मैं डाक्टर ऋषि केश जी से विचार अवस्था में भजन में कह रहा हूं। डाक्टर जी ! जन्म अनमोल है, समय थोड़ा रह गया, अधिकतर बीत गई। शरीर ने तो कर्म फल भोगना है। ईश्वर विश्वास बढ़ाओ। निश्चय किए हुए १५ दिन मेरे पास तो अवश्य रहने

को याद रखो। अब उसका बदल बनाओ। अपने उपजे विचारों को आचरण में लाओ, लाभ उठाओ। मोह पाश को प्रभु भरोसा पर तोड़ना चाहिए।

जैसे आप डाक्टरी पुस्तकों का अध्ययन करके आश्चर्य में आ जाते हो, कि हम इतनी आयु प्रैक्टिकल, अनुभव विद्या के होने पर भी अभी कुछ नहीं जानते ! ऐसे मैं भी इस आध्यात्म मार्ग में ज्यों-ज्यों जाता हूं, त्यों-त्यों आप की न्याईं अभी अपने को बहुत दूर पाता हूं। अभी तो सूक्ष्म मार्ग की अधिकार योग्यता ही नहीं बन रही, स्थूल भी पूरी तरह नहीं हो रहा. हमें तो अति सूक्ष्म में पहुंचना है।

२८-६-३५ आषाढ़ कृ० चौदस सोमवार २०२२ वि०

सुन्दर पुर कुटिया

प्रभु आश्रित ! प्रभु तो अनन्तस्वरूप अनन्त है। उन अनन्त के एक स्वरूप के अंश मात्र को पा लेना भी मानव जन्म की सफलता है, योग मार्ग की सफलता है। जैसे अनन्त जल में से लोटा भर हमें तृप्त कर देता है, बाढ़ आने पर हम भाग जाते हैं। प्रकाश ताप थोड़े से भी हम तृप्त हो जाते हैं। अन्न वायु आदि से भी उस अनन्त के अनन्त शक्तियों वाले देवताओं या तत्वों

के अंश मात्र से हमारा शरीर तृप्त संतुष्ट हो जाता है। ऐसे हमारी अणु-मात्र आतमा भी प्रभु के अनन्त स्वरूपों के एक अंश मात्र से तृप्त हो जाती है। जब आत्म तृप्ति हो जाती है, तो वही अंश मात्र शक्ति महान् बन कर बाहर झरनों से झरती लोगों को तृप्त संतुष्ट कर देती है।

लोग पूछते हैं, तुम उत्तराखंड गए थे। बहुत काल रह आए, कुछ पाया भी ? तुम क्या कह सकते हो, कि क्या पाया, क्या जाना ? यही उत्तर दो, कि मुझे तो कुछ ज्ञान नहीं। मेरा जीवन पाने न पाने जानने न जानने की गवाही दे सकेगा, जो आप लोगों को नजर आवे, वही कुछ समझ लो। प्रभु देव मेरी रक्षा करते रहें, और पथ प्रदर्शन करते रहें। जब तक एक भी संसारी वासना है, तब तक साधक हूं, साधना करनी है।

२९-६-६५ मंगलवार अमावस्या सं० २०२२ वि०

'ईशा वास्यमिदं सर्वम्"

प्रभु आश्रित ! बुद्धि से जानो, मन से मानो, इन्द्रियों से भोगो, प्राणों को रोको, और दूसरों की बुद्धि को कभी आधीन न बनाओ, अपितु अपने अनुकूल बनाने का आचरण सीखो तभी संसार में शांति होगी,

क्या जानो ? बुद्धि से परमेश्वर को सर्व व्यापक जानो। ईशा वास्यमिदं सर्वम् । मन से क्या मानो । मौत को मानो, संसार असार चलनहार मानो—यत् किंच जगत्यां जगत् । इन्द्रियों को कैसे भोगें, त्याग भाव से । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः। प्राणों को कैसे रोकें ? मा गृधः वह क्यों कि बड़ों को नौकर समझने से बुद्धि को आधीन करना होता है, और जब इससे सलाह ली जावे तो वह अनुकूल बन जाता है यही मर्यादा सिखाने के योग्य है तब संसार में शांति रहेगी ।

आज प्रातः आश्रम रोहतक में पहुंचा, डाक्टर जी की कार से। सत्संग उपदेश, नामकरण संस्कार डाक्टर शिव दत्त जी के पोते का हुआ, नाम संजीव कुमार धराया । माडल टाऊन ५॥ बजे स्वामी विरक्तानन्द जी रोगी के अस्पताल में दर्शन किए इन्सपैक्टर साहब सी०वी० के परिवार में उपदेश हुआ । यज्ञ और हवन नित्य करने की प्रतिज्ञा की । ऐसे सब प्रेमियोंके निवेदन पर उनके घरों में दो चार मिन्ट लगाते हुए वापस कुटिया पर पहुंचा ।

३०-६-६५ आषाढ़ सु० द्वितीया सं० २०२२ वि०

अपवित्रता के कारण

प्रभु आश्रित ! तन को अपवित्र करता है, काम

व्यभिचार, तन की कमाई को अपवित्र करती है, चोरी। अन्न को अपवित्र करती है, कंजूसी कृपणता, मन को अपवित्र करती है—ईर्ष्या। बुद्धि को अपवित्र करती है अन्याय, पक्षपात। वाणी को अपवित्र करता है, असत्य। कान को अपवित्र करती है, निंदा। आंख को अपवित्र करती है घृणा।

१-७-६५ वीरवार आषाढ़ शुक्ला तीज सं० २०२२ वि०

गुरु का प्यार और आशीर्वाद

प्रभु आश्रित ! आशीर्वाद और प्यार दोनों सब को प्यारे लगते हैं, और इच्छा भी सबको रहती है। जहां घनिष्ट सम्बन्ध हैं, माता पिता संतान गुरु शिष्य पति पत्नी—इनमें माता पिता संतान को सदा प्यार करते हैं और अनेक आशीर्वाद देते हैं, मगर यह मोह सम्बन्ध से होती हैं। हां विशेष रूप सच्ची आशीर्वाद या प्यार का तब होता है, ज़ब संतान कोई ऐसा काम जिसकी आशा न हो, कर पाए या कोई गुण विशेष इनको नज़र आए तब प्यार भी सच्चा और आशीर्वाद भी आत्मा से देते हैं, नहीं तो ये दोनों चीजें मोहक होती हैं, मन से निकलती हैं। पति पत्नी का केवल प्यार होता है, आशीर्वाद नहीं वह प्यार कामुक होता है, और गुरु

शिष्य का सम्बन्ध ग्राध्यात्मिक होता है, आत्मिक होता है, मोहक नहीं। गुरु शिष्य को आशीर्वाद तो देता है, मगर प्यार नहीं। प्यार करता तो है, मगर प्यार लेता नहीं। कहीं गुरु शिष्य के मिलने पर आशीर्वाद देता है, कहीं गुरु पीठ पीछे हर समय ग्राशीर्वाद शिष्य को देता है। इसका चिह्न है कि गुरु शिष्य पर इतना प्रसन्न होता है, कि जहां भी अवसर मिले, गुरु अपने शिष्य की पीठ पीछे प्रशंसा सराहना करता है, प्रसन्न होकर बोलता है। यह चिह्न शिष्य के लिए आत्मिक आशीर्वाद हर समय की होती है, और सराहना करना तो आशीर्वाद है, अन्दर प्रसन्न होना, उसका प्यार प्रकट करता है। कोई विरला भाग्यवान शिष्य होगा, जिसे मिलने पर गुरु प्यार भी देता है, गले लगा कर हृदय से हृदय मिलाता है, इस समय गुरु का रूप माता पिता सा बना होता है।

"उत्साह न तोड़ो"

प्रभु आश्रित ! जप आदि हवन यज्ञ करने वालों को जिनके अभी व्यवहार पूर्ण शुद्ध नहीं है, इन्हें कुछ विद्वान् लोग साधारणतया कहते हैं कि तुम्हारा यह जप हवन किया व्यर्थ जायेगा, जब तुम्हारा व्यवहार

शुद्ध नहीं । वह व्यर्थ अपनी शिक्षा बताने का निरादर करते हैं । दूसरे का उत्साह तोड़ना शंकित करना सभ्यता नहीं । भले व्यवहार पूर्ण शुद्ध नहीं हुआ । जाप यज्ञ का अपना फल है, वह कर्म है, अन्तःकरण की शुद्धि के लिए । जब तक अन्तःकरण शुद्ध नहीं वह उपासना के योग्य नहीं बन सकते । यह हैं दंड, मगर जाप आदि का फल सुपरिणाम तो ज़रूर रहेगा । मनुष्य का जन्म तो जरूर मिलेगा, ताकि वह अपनी न्यूनता को पूरा करते, अपने लक्ष्य अन्तःकरण को शुद्ध बना उपासना के योग्य बन जावें । मनुष्य जन्म ही तो इनका फल है, जाप करने वालों को घबराना या शंकित न होने दो ।

२-७-६५ शुक्रवार आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी २०२२ वि०

"गृहस्थ का जोड़ा"

प्रभु आश्रित ! गृहस्थ का जोड़ा बनता तो पूर्व कर्मों से है । साधारण जोड़े गृहस्थ की गाड़ी को चलाने के लिए अपने स्वार्थ पूर्ण करने के लिए होते हैं । जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध या कर्म नहीं होता, किसी एक जन्म के भुगतान मात्र का है । वास्तविक गृहस्थ का जोड़ा उस सद् गृहस्थी का है, जिनके स्त्री और पुरुष

के उत्तम संस्कार जन्म-जन्म के एंक जैसे होते हैं,
उनका मेल एक ही दिव्य कार्य की पूर्ति, या विस्त
परोपकार के लिए होता है। मानो पुरुष लड़का परोप
कारी, समाज या देश सेवी है, और कन्या भी
लगन की है, और उन दोनों का मेल हो जाता है,
दोनों एक ही उद्देश्य एक ही विचार के पूरक
इच्छुक होते हैं। कई ऐसे भद्र पुरुष और स्त्रियां
सेवा अर्पण हुए देखे जाते हैं। कई ऐसे भद्र पुरुष स्त्रि
यज्ञादि कार्यों में लगे हुए हैं। दिव्य साध्य के
पुरुष स्त्री मिल कर अथवा पृथक्-पृथक् भिन्न-
स्थानों पर जा-जा कर अपने उद्देश्य को फैलाते
एक दूसरे के लिए भद्रता की प्रार्थना करते हैं,
यात्रा सफलता की भावना और प्रार्थना करते हैं
ऐसे सद् गृहस्थी भाग्यशाली होते हैं, भगवान को
लगते हैं। जहां लोगों में जनता में आदरणीय देखे
हैं, साधारण गृहस्थी चाहे स्त्री पुरुष घर में नित्य
पूजा संध्या हवन मिल कर करते हैं, या दुकान
सौदागरी या व्यापार करते हैं। डाक्टरी प्रोफ़
अध्यापकी करने वाले भी हैं, मगर उनका सम्बन्ध
जन्म का नहीं होता अपने पेट पूर्ति के लिए करते

धन्यवाद

स्वर्गीय श्री महात्मा प्रभुआश्रित जी महाराज वर्तमान युग के परम तपस्वी, गायत्री, यज्ञ योग के निष्ठावान साधक और प्रचारक थे। उनकी लेखनी व वाणी में सरलता, स्पष्टता, सत्यता, माधुर्य था। जीवन काल में अनथक प्रचार जहां करते रहे वहां छः दर्जन पुस्तकें भी हर विषय पर लिख कर आर्य जगत का मार्ग दर्शन हेतु छोड़ गए। हर पुस्तक के कई-कई संस्करण छप चुके हैं।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त जो उन्हें ध्यान में प्रेरणाएं मिलती थीं उन्हें वे तत्काल अपनी डायरी में तिथि और समय के साथ नोट करते थे। उन डायरियों में अत्यन्त सुन्दर जीवन निर्माण के संदेश भरे पड़े हैं। वैदिक भक्ति साधन आश्रम का प्रकाशन विभाग उन्हें दानियों की सहायता से प्रकाशित करके जनता की सेवा कर रहा है। प्रकाशन विभाग के इन्चार्ज पंडित लाखपति जी शास्त्री धनियों को मिलते हैं और इन डायरियों के प्रकाशन में सहयोग प्राप्त करते हैं।

यह पुस्तक 'अन्तः साधना' श्री महाराज जी की डायरी २२-११-६४ से २-७-६५ तक को लेकर छपवाई

गई हैं। इसके प्रकाशन के लिए दिल्ली निवासिनी, श्रीमती राज बुद्धिराजा जो स्वयं विदुषी देवी हैं दिल्ली यूनिवर्सिटी में प्रोफैसर हैं। जापान में डेपूटेशन पर तीन वर्ष पढ़ा आई हैं। उन्होंने अपनी पवि॰ कमाई से १९८६ में २५०० रु० इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए दान दिए थे तथा दूसरे संस्करण के प्रकाशन हेतु ५०००/- (पांच हजार रुपये) सहर्ष प्रदान किए हैं।

प्रकाशन विभाग जहां बहिन जी का धन्यवाद करता है वहां उनके व उनके परिवार के स्वास्थ्य समृद्धि के लिए प्रभु देव से प्रार्थना करता है।

लखपति शास्त्री
अधिष्ठाता वैदिक भक्ति साधन आश्रम,
रोहतक

जन्माष्टमी
२०५० वि०